श्रीः ।

मुधोल राजवंश का प्राचीन इतिहास ।

Printed by Khemraj Shri Krishnadass at their Shri Venkateshwar Steam Press, 7th Khetwadi Khambata Lane, Bombay.

Published by Private Secretary of Mudhol.

१५८९ ई. | १६४१ ई. | (Kalyani 1657-58) घोडजी (शिवराव) ... सेनापति ...

१७ राजा बाजी राजे घोरपडा बहादुर — अंबाजी- मृ. कल्यानीकी लडाईमें १६५७-५८ ई. (गजेंद्रगड और सोंडूर-खानदानका मूलपुरुष) — (मशहूर सेनापति कापशी खानदानका मूलपुरुष) — (अमीर उल-उमर, ... और दत्तवाड खानदानका मूलपुरुष)
ज. १६०५ ई. | मृ. १६६१ ई. सुभानजी नाबजी

१८ राजा मालोजीराजे घोरपडा बहादुर (दूसरे) — शंकराजी or (जयसिंग) तासगांवके लड़ाईमें मरगये १६६६-६७ ई.
ज. १६५० ई. | मृ. १७०० ई.

१९ राजा अखैजी घोरपडा बहादुर (दूसरे)
ज. १६७४ ई. | मृ. १७३६ ई.

२० राजा पिराजी — बाजी कृष्णा नदी पर मारे गये (Killed on the Krishna)
ज. १६९० ई. | मृ. १७३७ ई. (By brother in an action fought near Bijapur) बीजापुरके नजदीक हुई चकमकमें बांधवोंने मारा

२१ राजा मालोजी (तीसरे) — शंकराजी — रामचंद्र — शंकराजी
ज. १७१० ई. | मृ. १८०५ ई.

गोविंदराव — केदारराव — पर्वतराव — महाराव — बाजीराव — राणोजी
ज. | मृ. १७६३ ई. राक्षसभवनकी लड़ाईमें (Rakshas bhuwan)
महाराव — गोविंदराव
राणोजी मृ. १७७९ ई. वडगांवकी लड़ाईमें

२२ राजा नारायणराव — महाराव — शंकराजीराव or (...) — मालोजीराव — पर्वतराव — हणमंतराव
ज. १७५५ ई. | मृ. १८१७ ई.

२३ राजा ...

अथ

मुधोल राजवंशका प्राचीन इतिहास।

प्रथम अध्याय.

लक्ष्मणसिंह. श्रीरामचंद्रजीसे १२८ वीं पीढी के सूर्यवंशी राणा लक्ष्मणसिंहजी वि.१३३१ (हिजरी ६७५) में राजगद्दी पर बैठे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि राणा लक्ष्मणसिंह का समय राजपूत राजाओं के लिये बड़ा संकटमय था। बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी ने थोड़े ही समयमें चित्तोरके किले पर दोबार आक्रमण किया और अन्ततः उसे, जो कि इतने कालतक मुसलमानों के हाथों से बचा हुआ था, अपने अधिकार में कर लिया। इस लड़ाई में राजा लक्ष्मणसिंहके एक के बाद एक इस तरह ग्यारह पुत्र मारे गये। अन्त में राणा ने अपने प्यारे पुत्र अजयसिंह को कुछेक चुने हुए राजकर्मचारियोंके साथ किले के बाहिर भेज दिया और किलावाड़ा नामक पश्चिमीय प्रान्तमें रहने के लिये आज्ञा दी।

अजयसिंह. अजयसिंहकी बिदाई के समय लक्ष्मणसिंह ने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि उसके बाद राजगद्दी पर अजयसिंह के बड़े भाई अरिसिंह का पुत्र हमीर बैठे। अजयसिंहने किलावाड़ा

प्रान्तमें पहुँच कर वहां कुछ काल तक राज्य किया। इस कालमें भी उसे किलावाड़ा के आसपास के अनेक छोटे बड़े सरदारोंसे लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन सरदारों में मुञ्ज सबसे अधिक शक्तिशाली था, उससे अजयसिंह का द्वन्द्व संग्राम हुआ। अन्तमें मुञ्ज युद्ध के मैदानसे भाग तो गया लेकिन अजयसिंह के सिरमें गहरी चोट आई। अजयसिंहने अपनी राजधानीमें आकर अपनी चोट का बदला लेनेके लिये सुजनसिंह और अजबसिंह नामक अपने दो पुत्रों को भेजा। इन दोनों की अवस्था उस समय केवल दस ग्यारह वर्षके लगभग थी। ये दोनों भाई अपने कार्य में सफल न हुए और राना ने अपने भतीजे हमीर को शत्रु से

राना हमीर.

लड़ने के लिये भेजा। हमीर ने चलते समय मुञ्ज का शिर काटकर लानेकी प्रतिज्ञा की। थोड़े समय के बाद ही वह अपनी प्रतिज्ञा के पूरा करने में सफल हुआ और उसने मुञ्जका शिर लाकर अपने चाचाके चरणों में रख दिया और नम्रतापूर्वक पूछा कि यह मुञ्जका शिर है या नहीं? राणा अजयसिंह ने अपने भतीजे को छाती से लगाते हुए कहा--'प्यारे बच्चे! तुम्हारे भाग्यमें लिखा दीखता है कि इस संपूर्ण जातिका उत्तरदायित्व तुम्हारे ही कंधों पर रहना चाहिये।' उसने मुञ्जके शिर से थोड़ा रक्त लेकर हमीरके माथे पर उसका तिलक लगा दिया।

द्वितीय अध्याय.



बहमनी राज्य की नौकरी.

हमीर के राणा होने की घोषणा के बाद अजबसिंह तथा सुजनसिंह नामक अजयसिंह के दोनों पुत्रों ने स्वाभाविक तथा राजगद्दी की आशा छोड़ दी। अजबसिंह ने तो यहाँ तक किया कि अपनी आत्महत्या कर ली और सुजनसिंह किलावाड़ा को छोड़ कर कुछ दूर दक्षिण की ओर चला गया और वहीं बस गया। कुछेक विश्वस्त अनुयायियों के समूह के साथ अपने भाग्य की परीक्षा करनेके लिये सुजनसिंह दक्षिण में मुसलमानोंकी सेना से जा मिला। मुसलमान सेनापति जिसके नीचे सुजनसिंह ने नौकरी की,हसनगंगू था जिसे दिल्ली के बादशाहने जाफ़रखान की पदवी दी थी। सुजनसिंह के नौकरी करनेके थोड़े दिन बाद ही जाफ़रखान ने दिल्ली के राजसिंहासन से अपनी स्वतन्त्रता उद्घोषित कर दी और अपने लिये अलाउद्दीन हसन का खिताब स्वीकार किया। दिल्ली के बादशाह महम्मद तगलक ने जाफ़रखान के बलवे को दबानेके लिये दक्षिण की ओर प्रयाण किया। जाफ़रखान ने अपने पुराने स्वामी से लड़ाई लड़ी—और उसकी ओर से सुजनसिंह तथा उसके पुत्र दलीपसिंह ने अपना पराक्रम दिखाया। उन्होंने बादशाह की सेना के

आक्रमणों का सफलतापूर्वक सामना किया। जाफ़रखान के भाग्य से महम्मद तगलक ने गुजरात के एक दूसरे बलवे का हाल सुना और उसे जाफ़रखान के विरुद्ध आक्रमण को छोड़ देना पड़ा। जाफ़रखान अपने नवीन सरदार सुजनसिंह से बहुत प्रसन्न हुआ और उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

सुजनसिंह तथा दलीपसिंह दूसरी ओर बादशाहके मुख्य सलाहगीर सैफुद्दीनके भी स्नेहभाजन थे। सुजनसिंह और उसके पुत्र को देवगिरि प्रदेश के अन्तर्गत मिरत प्रान्त में कई गांव जागीरमें मिले। यह जागीरके थोड़े गांव अब भी सुजनसिंह के वंशजों के अधिकार में हैं।

अपने को चमकाने के लिये दलीपसिंह को एक और अवसर मिला। बहमनी बादशाहों और विजयनगर के राजाओं में अपने२ राज्य की सीमाके बारे में झगड़ा उपस्थित था जिसे तै करनेके लिये लड़ाई की आवश्यकता थी। दलीपसिंह दो हजार भालेवाले योद्धाओं का नेता बनकर बहमनी राजा की ओर से लड़ा। यह दलीपसिंह और उसके अनुयायी राजपूतों की वीरता ही थी कि जिसके कारण लड़ाई बहमनी राजाओं की विजय तथा विजयनगर की सेनाओं के पूर्ण पराजयमें समाप्त हुई। दलीपसिंह का बहुत आदर किया गया उसने विजयीराजा से अनेक मूल्यवती भेंटें प्राप्त कीं।

दलीपसिंह तेरह सालकी लगातार तथा घटनापूर्ण नौकरी के बाद हिजरी सन् ७६६ के लगभग परलोक को सिधारा।

सिद्धजी.

अपने पिता की मृत्युके बाद दलीपसिंह का युवा पुत्र सिद्धजी जिसे शिवाजी के नाम से भी पुकारा जाता है, बहमनी राज्य की नौकरी में आया। कुछ ही कालबाद महम्मदशाह बहमनी मर गया और उसके पश्चात् उसका पुत्र मजाहिदशाह गद्दीका उत्तराधिकारी हुआ। मजाहिदशाह स्वयं पहलवान होने से सुन्दर सुडौल शरीरवाले मनुष्योंको बहुत चाहता था बलवान तथा साहसी सिद्धजीको बादशाह का शरीररक्षक बनाकर सम्मानित किया गया। मजाहिदशाह ने थोड़े दिन राज्य किया, उसके शत्रु बढ़ते गये और अन्तमें उसके चाचा दाऊदखांने उसको कत्ल कर दिया। दाऊदखां गद्दीपर बैठ गया किन्तु अपने राज तिलकके सतरहवें दिन ही मजाहिदशाह की बहिनके उत्तेजन से धोखा देकर कत्ल कर दिया गया।

बहमनी राज्यकी घटनायें.

सिद्धजीका सागरका थानेदार होना.

जब कि दाऊदखाँ के पुत्र महम्मदसन्जर को राजसिंहासन पर बैठानेके कपटप्रबन्ध किये जा रहे थे, रुखपरवरआगा अलाउद्दिन बहमनी के कनिष्ठ पुत्र सुलतान महम्मद को बादशाह बनानेमें सफल हुआ। इस सुलतान का राज्यकाल शान्ति और सुख समृद्धि के लिये प्रसिद्ध था! उसके समयमें केवल एक छोटासा बलवा हुआ। बहाउद्दीन

नामक एक पुरुष सागर के किले का थानेदार था। उसके दो लड़के महम्मद और खाजा राजा के पास रहते थे। उनके शत्रुओं ने उनके विरुद्ध राजा के कान भर दिये परिणाम यह हुआ कि राजा के क्रोध से भयभीत होकर वे दोनों अपने पिता के पास भग गये और पिता तथा पुत्रों ने एक बलवा खडा कर दिया। उनको पूर्णतया शान्त कर दिया गया और सिद्धजी अपनी लम्बी विश्वस्त सेवाओं के कारण सागर के किले का थानेदार बनाया गया । सुलतान महम्मद के बाद उसका पुत्र गियासुद्दीन गद्दी पर बैठा, परन्तु उसके बैठने के थोड़े दिनके पश्चात् ही धोखा देकर उसकी आंखें निकाल लीगईं और उसका भाई शमसुद्दीन राजा बन गया।

सिद्धजीका फीरोजशाह की ओर होना.

इसके राज्य के दिनों में ही दाऊदखां के पुत्र फीरोजखां और अहम्मदखां राज्यमें मशहूर होने लगे । शमसुद्दीन की मां के मन में ईर्ष्या होने लगी और उसने इन दोनों को गिरफतार कराने का प्रयत्न किया । वे सागर किले की ओर भाग गये जहाँपर सिद्धजी ने उनका पक्ष लिया और फीरोजखां को फिरोजशाह बहमनी के नाम से घोषित कर दिया। उसने स्वयं सरनौबत का खिताब स्वीकार किया और फीरोजशाह को वास्तविक बादशाह बनाने के विचार से राजधानीकी ओर प्रस्थान किया परन्तु बादशाह की असंख्य फौज ने गुलबर्गा

के पास मर्तूर की सीमा पर लड़े हुए युद्धसे सिद्धजी की पलटन को भगा दिया। सिद्धजी के पुत्र भैरवजी ने अपने आपको इस असफल युद्ध में प्रसिद्ध किया। सिद्धजी इस लडाई में काम आये। उन्होंने बादशाह की इकतीस साल तक आपत्ति और सुख दोनों में एक भाव से सेवा की।

सिद्धजीकी मृत्यु.

इस पराजयसे निर्भय होकर फीरोजशाह ने छल द्वारा अपना मतलब पूरा किया और हिजरी सन् ८०० में बहमनी राज्य की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठ कर फीरोजशाह ने अपने मित्रों तथा सहायकों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करनेमें बड़ी बुद्धिसे काम लिया। सिद्धजी ने तो फीरोजशाह के लिये लड़ते हुए अपने प्राण छोड़ दिये और भैरवजी ने भी जो कुछ भी कर सकते थे किया था। कृतज्ञता प्रकाशनार्थ फीरोजशाह ने भैरवजी को मुधोलकी जागीर दी। बादशाह ने रबिलावल महीनेकी २५ वीं तिथि हिजरी सन् ८०० को एक आज्ञापत्र निकाल कर भैरवजी को मुधोल की जागीर उसके अन्तर्गत ८४ गावों समेत प्रदान की। इन्हीं भोसाजी के पीछे उनके वंशने 'भोसला' उपनाम प्राप्त किया। भैरवजी ने फीरोजशाह बहमनी के राज्यकाल में एक विशेष भाग लिया। जब उसके राज्यान्तर्गत रायभाग प्रदेश के एक हिस्से में कुछेक सरदारोंने झगड़ा खड़ा किया

भैरवजी या भोसाजीका ८४ गांवांसमेत मुधोल की जागीर पाना.

शव भैरवजी ने देवराज और कर्णसिंह नामक अपने दोनों पुत्रोंके साथ उसे शान्त कर अपने राजपूती शौर्य का अच्छा परिचय दिया। कर्णसिंह हिजरी सन्८१५में लड़ाई में मारे गये। बहमनी और विजयनगर के राजाओं के बीच सन्धि कराने के प्रयत्न में भी भैरवजी का भाग था। उनकी मृत्यु अपने स्वामी की ग्यारह साल सेवा करने के बाद हिजरी सन् ८१० में हुई।

देवराज. उसके बाद उसका पुत्र देवराज जागीर का स्वामी बना और फीरोजशाह ने भी उसे उसका निश्चित अधिपति बना दिया। देवराज ने अपने बादशाह की सोलह सालतक नौकरी की और बादशाह फीरोजशाह की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही हिजरी सन् ८२५ में परलोक को सिधार गया। फीरोजशाह का उत्तराधिकारी उग्रसेन. उसका भाई अहमदशाह हुआ। गद्दी पर बैठने के कुछ काल के बाद ही अहमदशाह ने पुरानी पराजय का बदला लेने के विचार से विजयनगर के राज्य के विरुद्ध प्रयाण किया। विजयनगर की सेना को भगा देने में उसे सफलता प्राप्त हुई पराजित सेनाने जाकर अपने आपको किले में बन्द कर लिया। उसके बाद किले के चारों ओर जो घेरा डाला गया उसके बीच में एक छोटे से झुण्ड के साथ बादशाह शिकार खेलने चला गया। वहां पर विजयनगरकी सेना के एक समूह ने उसे धोखे में आ दबाथा

और वहीं वह शत्रु द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता, यदि देवराज का पुत्र उग्रसेन और उसके अनुयायी उसकी सहायता को न होते। राजा अपने सेनापति उग्रसेन से बहुत प्रसन्न हुआ और हिजरी सन् ८२७ में उसे विशेष सम्मानित किया।

कोंकण की लड़ाइयाँ.

अलाउद्दीन के राज्यकालमें उग्रसेन और प्रतापसिंह दोनों भाइयोंने अनेक साहस के कार्य दिखा कर अपने बादशाह के लिये कोंकण प्रदेशमें कई किले जीते। जिसके लिये वाई परगना में उन्हें एक बड़ा भूमिभाग जागीर में मिला। ये लड़ाइयाँ उन प्रसिद्ध मरहटे राजाओंके साथ लड़ी गई थीं जो कि कोंकण या पश्चिमीय घाटों में राज्य करते थे।

उग्रसेन की गिरफतारी और मुक्ति.

अनेक बार बहमनी राज्य के शत्रुओं को भी विजय प्राप्त हुई और इसी प्रकार की एक दुर्भाग्ययुक्त पराजय के समय उग्रसेन अपने शत्रुओंसे कैद कर लिया गया (हिजरी सन् ८५८ ई० १४५३)। प्रतापसिंह और उग्रसेन के पुत्र कर्णसिंह तथा शुभकृष्ण ने दो तीन वर्ष तक लड़ाई जारी रक्खी और शत्रुका किला जीतने और उग्रसेन को छुड़ानेमें सफल हुए। उग्रसेन की मृत्युके पश्चात् उसके पुत्रों ने बादशाह के यहाँ सेनापतियोंके पद पर

रामकृष्णका अपने भाईसे अलग होना.

नौकरी की। लेकिन किसी मतभेद के कारण छोटा भाई शुभकृष्ण और उसका चाचा प्रता-

पसिंह चले गये और हि० सन् ८६५ ई० १४६० के लगभग देवगिरि के पास जा बसे।

कर्णसिंह. इन्हीं दिनों शंकरराव नामके सरदार के साथ अब भी कोंकणमें लड़ाई हो रही थी। इसी सरदार ने मलीक उत्तेजार को सन् १४५३ में परास्त और उग्रसेन को गिरफतार किया था। शंकरराव से लड़ाई लड़ते हुए उग्रसेन के ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह ने अपने पुत्र भीमसिंह के साथ अपना महान वीरत्व प्रदर्शित किया और अनेक शूरताके कामों के बाद शत्रुके किले को ले लिया। बादशाह ने पिता और पुत्रको बड़े सम्मान प्रदान किये।

कोंकण का आक्रमण. सन १४६९ ई० में मुहम्मद गवन फौजका प्रधान सेनानायक था। इससे चौदह साल पूर्व अर्थात् १४५५ ई० में कोंकण प्रदेश में शत्रुओं ने बहमनी बादशाह की फौज पर विजय प्राप्त की थी, जिसके कारण से वे अत्यन्त मदोद्धत हो गये थे। इस बीच में बहमनी राज्य की सेनाओं को मालवे के सूबेदार से लड़ते रहने के कारण १४५० ई० की पराजय का बदला लेने का अवसर न मिला था, और बहमनी राज्य को इस मध्यमें शत्रुओं द्वारा अनेक हानियाँ हो चुकी थीं। कोंकणवासी शत्रुओंने वाई परगने के कुछ भाग को फिर ले लिया था, लेकिन जैसेही आक्रमण करनेका उचित अवसर आया बहमनी बादशाहोंका प्रसिद्ध तथा अनुभवी

मन्त्री मुहम्मद गवन स्वयं इन बलवाइयों के विरुद्ध भेजा गया। प्रायः ऐसा होता था कि मुसलमानी सेनायें वर्षाऋतुके बाद कोंकण पर आक्रमण किया करती थीं और शत्रुओं को हराकर उन्हें वशमें कर लेती थीं, किन्तु फिर वर्षाके आरंभ होते ही नदियों में बाढ़ आजाने के कारण इन पहाड़ी प्रदेशों में वे बड़ी २ सेनायें अपने लिये भोजन तथा लड़ाई का सामान नहीं पा सकती थीं। इसके सिवाय वहाँ के निवासियोंके पास भी खाने पीने की सामग्री पर्याप्त नहीं होती थी। ऐसी दशामें इतनी बड़ी सेना के लिये उन खेती रहित पहाड़ों में भोजनका सामान पाना बिलकुल असम्भव था। इन विशेषताओं के कारण पहाड़ी जातियाँ बादशाही फौज का सामना कर उस से लड़ सकती थीं और फिर वर्षा ऋतु में अपने खेतीके काम में लग जाती थीं।

'घोरपडे' पदवी की प्राप्ति.

१४६९ ई. में बादशाही फौजों ने शत्रुकी सेना को अन्तिमवार घेरा था। वर्षाऋतु बिलकुल पास ही थी। यदि घेरा उठा लिया जाता, तो बादशाही फौज को शुरूसे लेकर सारा काम फिर करना पड़ता, इस लिये कर्णसिंह और भीमसिंह ने निश्चय किया कि किसी न किसी छल या अन्य, उपायसे वर्षाऋतु के आनेसे पूर्व ही शत्रुओं को जीतना और किले को वशमें कर लेना चाहिये। एक रातको उन्होंने एक गोह (एक जानवर जिसे मराठी में घोरपड

कहते हैं) की कमरसे रस्सी बांधी और कुछेक चुने हुए आदमियों के साथ उसे किले की दीवाल के पास ले गये। उन्होंने उस गोह की गर्दन से एक नली बाँध दी जिससे वह सामने ही देख सके और सीधी ही चढ़ सके इसी प्रकार उन्होंने तीन चार गोहें लगादीं-जिनमें से एक किले की दीवाल पर कुछ दूरी तक चढ़ गई और उसकी देह से बँधी हुई रस्सी को पकड़ कर एक आदमी वहाँ तक पहुँच गया। फिर उसके पीछे दूसरी गोह लगाई गयी, जिसकी सहायतासे वह आदमी और भी ऊपर पहुँच गया।इस प्रकार किले की दीवाल का अन्त पा लिया गया। फिर दीवालके ऊपर से रस्सी की सीढी बांध दी गई और उसके सहारे बहुत से आदमी किले की दीवाल पर पहुंच गये उन्होंने मुख्य द्वार के पहरेवालों पर आक्रमण कर उन्हें मार दिया और फाटक खोल दिये। शत्रुओं ने सोचा था कि किले की सीधी दीवाल पर चढ़ना बिलकुल असम्भव है, इसलिये वे अचानक ही पकड़े गये और घेरनेवालों ने अपने आक्रमण को सफलतापूर्वक पूरा किया। इसी घमसान युद्ध में कर्णसिंह बुरीतरह घायल हुआ और अपने बादशाह की सेवा करते हुए मारा गया। जैसा कि पहिले तै होचुका था फाटकों के खुलते ही घेरनेवाली सेना किले में घुस गई और किले को वश में कर लिया। इस प्रकार

कर्णसिंह की मृत्यु.

वीरतापूर्वक किला जीतने के उपलक्ष्य में बादशाह ने प्रधान सेनानायक मुहम्मद गवन को अनेक सम्मानों से विभूषित किया और भीमसिंह को 'राजा घोरपडेबहादुर' का विशेष खिताब दिया और साथ ही उसे तीन हजार घुडसवारों का नायक बना दिया।

भीमसिंह प्रथम घोरपड़े.

जब विजयी सेनापति मुहम्मद गवन और भीमसिंह राजधानी को वापिस आये बादशाह ने स्वयं उन्हें सम्मान के वस्त्र दिये। उसी स्मरणीय समय से लेकर भीमसिंह के वंश ने अपने नाम के साथ 'राणा' के स्थान पर 'राजा' शब्द जोडना प्रारंभ किया और इस घटना के बाद वे 'घोरपडे' का उपयोग अपने उपनाम की भाँति करने लगे। शुभकृष्ण के वंशज अपने को भोसले ही कहते रहे। वे मिरतप्रान्त की अपनी जागीर में रहते थे और बादशाह के सरदारों की तरह उसकी सेवा करते रहे। उस शाखाने अपने आपको सन १४७० ई० में विशेष रूप से चमकाया।

'राणा' से 'राजा' होना

कुछेक झगडों को तै करने के विचार से कुछ कालतक अपनी जागीर में रहकर भीमसिंह राजधानी को लौट गया तहाँपर एकप्रकार का विक्षोभ सा फैला हुआ था। रियासत में दो मुख्य दल थे—एक परदेशियोंका तथा दूसरा दक्षिणियोंका। इन आन्तरिक झगड़े बखेड़ों के कारण बादशाह को इतना उत्तेजित होना पड़ा कि उसने अपने भक्त राजनीतिज्ञ तथा

बहमनीयों की अवनति.

योद्धा मुहम्मदगवन को १४८१ ई. में कत्ल करा दिया। मुहम्मदगवन की मृत्यु से राज्य को केवल एक बहुत बडा नुकसान ही नहीं हुआ परन्तु उसके बाद राज्यमें अनेक आन्तरिक झगड़े खड़े होगये और अन्त में बहमनी राज्य का ही अन्त होगया।

यूसुफआदिलखां की उन्नति.

इससे पूर्व १४८२--८३ई० में गोआ के विरुद्ध एक महान आक्रमण किया गया इसी कार्यके लिये यूसुफ आदिलखाँ बेलगांव से भेजा गया और विजयनगर की सेना ने भी इस घटनापूर्ण अवसर पर गोआके लिये प्रस्थान किया। इस आक्रमण के समय भीमसिंह ने विशेष बहादुरी दिखाई। सारी फौज सन् १४८९ ई० में राजधानी को लौटी पर राजधानी में आन्तरिक मत भेद के कारण दक्षिणी सेना ने, जो कि राजधानी में थी लौटती हुई सेना पर आक्रमण किया। सारा काम बिगड़ गया होता, यदि लौटी हुई फौज दक्षिणी सेना को परास्त करनेमें सफल न होती। इसके बाद आदिलखान और उसकी सेना अपने साथियों समेत अपनी २ जागीरोंको लौट गये।

तृतीय अध्याय.



बीजापुर के आदिलशाहों की नौकरी.

इस घटनापूर्ण अवसर पर अलीयूसुफ आदिलशाह ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर बीजापुरमें जो कि उसकी जागीर के शहरोंमें एक था स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। रियासत के मामलोंके प्रबन्ध के लिये मुहम्मद गवन जैसे नीतिज्ञपुरुषों का पाना बहुत कठिन है किन्तु उसका तो उपरि लिखित अनुसार खून कर दिया गया था और इस प्रकार वह राज्य की सेवा से जाता रहा। यूसुफ आदिलशाहने जिसे मुहम्मद गवन अपने पुत्र सम मानकर प्यार करता था, सोचा कि शायद उसे भी मुहम्मद गवन के मार्ग का अनुसरण करना पड़े और परिणाम स्वरूप उसे एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना पड़ा घोरपड़ों का खानदान भी जो आदिलखानसे प्रेम के भाव से जुड़ा हुआ था बहमनी दरबार से अलग होगया और उसके बाद वे लोग बीजापुर के आदिलशाह के सूबेदार हो गये बहमनी दरबार से अलग हो जाने का एक और भी कारण था- घोरपड़ा वंश और मुहम्मद गवन के बीच घनिष्ठ प्रेम का सम्बन्ध था और उसके द्वारा वे आदिलखान से भी सम्बन्धित होगये थे। बेलगाँव और

भीमसिंह का पुत्र खेलोजी

गोआ के विरुद्ध आक्रमणों के समय घोरपड़े लोग यूसुफ आदिलखान से कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़े थे। अपने सामान्य राजा को बचाने के लिये इन दोनों ने रक्त बहाया था। यूसुफ आदिलशाह ने इस लम्बी मित्रता को खूब याद रक्खा और जब वह बीजापुरका बादशाह होगया उसने भीमसिंह के पुत्र खेलोजी को बुलाया। उसने खेलोजी के वंश की बहमनी बादशाहों से प्राप्त कर्नाटक और वाई प्रान्त की जागीरें जारी रक्खीं। जैसा कि आगे चलकर विदित होगा, इन घोरपडों को आदिलशाह ने आवश्यक कार्य भार सौंपे और इस प्रकार वे नवीन राज्य में उन्नति ही करते चले गये।

जब ईसवी १४८९ में यूसुफ आदिलशाह ने बीजापूरमें अपना राजवंश स्थापित किया, इस समय उसके राज्य में कोंकणके थोड़ेसे भाग को छोड़कर भीमा और घटप्रभा नदियोंके बीच का सारा भूमिभाग सम्मिलित था। गोमान्तक प्रान्त अभी तक आधा जीता हुआ ही पडा था। अगली शताब्दी में कोंकण और विजयनगर के राज्य पूर्णतया जीत कर बीजापुर के राज्य में मिला लिये गये। पीछे जाकर बीजापुर के प्रदेश लंका तक फैल गये। इस विस्तार में मुख्य हिस्सा घोरपड़े खानदान का था। भिन्न भिन्न समयों पर घोरपड़ा वंशकी मिली हुई जागीरें उसके

द्वारा भिन्न २ प्रान्तोंके जीते जानेको स्पष्टतया सूचित करती हैं। आगे हम देखेंगे कि घोरपड़ों ने आदिलशाह की किस प्रकार सहायता की।

हम देख चुके हैं कि यूसुफ आदिलशाह ने खेलोजी को बुलाया था और उनसे मित्रता करली थी। गोआके धावे से लौट कर ई० सन् १५१० (हि० सन् ९१६) में यूसुफ आदिलशाह मर गया। उसका नाबालिग लड़का इस्माइल आदिलशाह गद्दीपर बैठा और कमालखां ने राज्य के मामलो को देखना शुरू किया। इसके अनन्तर बीजापुर और अहमदनगर के कुछेक कुटिल नीतिमान पुरुषों ने राज्यों को अपने वशमें करने के लिये उस समय के बादशाहों को उनके सिंहासनों से हटानेका प्रयत्न प्रारम्भ किया। अहमदनगर में अमीर बरीद अपने स्वामी निजामशाह को कैद करने में सफल हुआ। यहां बीजापुर में कमालखाँ ने जवान इस्माईल और उसकी माँ को कैद कर एक बड़ी फौज के साथ शोलापुर की ओर प्रस्थान किया। अहमदनगर से समयोपयोगी सहायता न आ सकने के कारण शोलापुर का किला कमालखां के हाथ लग गया और कमालखां विजयी होकर बीजापुर वापिस आया। उसने युवा इस्माईल के नाम से एक शानदार दरबार किया परन्तु साथ ही बादशाह को मरवाने या राज्यच्युत करनेका प्रयत्न करता

रहा । पांच हजार मजबूत शरीर रक्षकों को उसने वर्खास्त कर दिया और बीजापुर की नौकरीमें जो विदेशी सेना थी । उसे भी हमेशा के लिये तोड़ दिया । पर कमालखां एक दास के द्वारा जिसे इस्माईलकी माँ ने इस कामके लिये नियुक्त किया था मारा गया। इस प्रकार कमालखाँकी नीति शुरूमें ही विफल हुई किन्तु फिरभी महल में रहने वाले कमालखांके आदमी बादशाह के खून करनेके प्रयत्नमें लगे रहे और उसके बाहिर बादशाह के अनुयायी सैनिकों तथा कमालखाँ के दक्षिणी पुरुषोंमें लड़ाइयाँ होती रहीं । अन्तमें कमालखां के आदमियों की हार हुई और उन्हें कार्यक्षेत्र छोड़कर भाग जाना पड़ा ।

इन घटनाओं के पीछे इस्माईल वास्तविक राजा हो गया और उसने अपने उन सब अनुयायियों को जिन्होंने उसकी सहायता की थी सम्मानित किया । निजामशाह के मन्त्री अमीरबरीद ने अन्य दाक्षिणी मुसलमान राजकुलों को मिलाकर १५१४ ई० (हि० सन् ९२०) में बीजापुर के विरुद्ध प्रयाण किया । इस्माईल ने जो यद्यपि अभी जवान ही था, पहिले शत्रु की सेना को विना किसी रुकावट के बीजापुर तक चला आने दिया और फिर वह बारह हजार चुने हुए घुड़सवारों के साथ शत्रुके विरुद्ध चल पड़ा; शत्रुकी पूरी हार हुई । इस लड़ाई में यह बात ध्यान देने योग्य

है कि बीजापुर की सेनामें सब परदेशी सिपाही ही थे क्योंकि कमालखां के बलवे के बाद बादशाह ने दक्षिणी या सिद्दी सेनाओं को नौकरी में न रखनेका निश्चय कर लिया था अमीर बरीद के साथ की इस लड़ाई में खेलोजी घोरपड़े मारा गया।

खेलोजी का मारा जाना.

महलोजी.

बादशाहने उनके प्रति जिन्होंने इसकी सहायता की थी-कृतज्ञता प्रकाशित करी और खेलोजी का पुत्र महलोजी अपने वीर पिताके स्थान पर नियुक्त किया गया। ईसवी सन् १५२० (हि. ९२७) में बादशाह ने विजयनगर के विरुद्ध प्रयाण किया। जब कि अभी बीजापुर की सेना का तंबू कृष्णानदीके इसी ओर था; बादशाह कुछेक अनुयायिओंके साथ नदी की दूसरी ओर चला गया और वहाँ अपने आपको एक बड़ी शत्रु सेना से आक्रान्त देख कर अचम्भेमें पड़ गया। उस समय जो साथ थे उन्होंने अन्ततक लड़ाई की किन्तु शत्रुकी महती सेनाके सामने वे कुछ न कर सके। पीछे से सहायता मिलने की भी कोई आशा न थी। इस संकटमें बादशाह कुछ एक आदमियों के साथ लौट आया और लौटते समय शत्रुओं के साथ लड़ती हुई अपनी सेना से बचा लिया गया। बादशाह का हाथी सुरक्षित दशामें नदी की दूसरी ओर पहुंच गया इस लड़ाई के अवसर पर महलो-

विजयनगर केसमीपमहलोजी द्वारा इस्मायलका बचाया जाना.

जी की वीरता प्रदर्शित हुई। लड़ाई से सुरक्षित लौट आने पर बादशाह ने अनुग्रह की दृष्टि से महलोजी को बहुत सम्मानित किया। महलोजी ने जो कुछ भी मांगा बादशाह ने उसके देनेमें तत्परता दिखाई और महलोजी ने उसके बदले में घोरपडे वंशपर अपना प्रेम और अनुग्रह कम न होने देने की बादशाहसे विनम्र प्रार्थना की। महलोजी ने कहा कि इस बातसे कि जो उनके वंश के आदमी निश्चित रीति से बादशाह के आगे सिर नहीं झुकाते, उससे उन्हें सन्देह न करना चाहिये और साथ ही उन्हें उनकी राजभक्तिमें भी शंका न करना चाहिये क्योंकि वह और उसका खानदान अपने स्वामी के लिये अपनी जान देने के लिये हमेशा तयार रहते हैं। इसके पश्चात् बादशाह ने इस वंश के सरदारों को दो मोरचल प्रयोग करने का सम्मान दिया और इसके सिवाय उनको बादशाहके लिये निश्चित प्रथाके अनुसार प्रणाम करने (कुर्निसात) से मुक्त कर दिया।

कुर्निसात से रिहाई.

ईसवी सन् १५३१, ३२ (हि० ९५८, ५९) में जब कि बीजापुर के बादशाह निजामशाहों से लड़ रहे थे महलोजी और उसके पुत्र अखयसिंह ने इस लड़ाई में एक विशेष भाग लिया। यह युद्ध परदेशियों का युद्ध कहाया गया क्योंकि इसमें परदेशी सेनायें बहुत कामकी निकलीं। इसके पीछे बीजापुर दरबारमें दक्षिणी

और परदेशी शिया और सुन्नी हिन्दू और मुसलमान आदि अनेक दल हो गये । घोरपड़े वंश ने अपने आपको इस दलबन्दी से पृथक् रक्खा ।

अखयसिंह. असतखान के मंत्रित्व काल में अखयसिंह और उसके दोनों लड़के अपनी जागीर में वहां की सुख और शान्ति स्थापनके लिये रहते रहे। असतखान १५४८ ईसवीमें मर गया। करणसिंह और भीमसिंह को बीजापुर के बादशाह ने १५६५ वाली तालीकोट की मशहूर लड़ाई में काम करने के लिये बुलाया। घोरपड़े लोगों ने करणसिंह और उसके पुत्र चोलराज तथा

करणसिंह. भीमसिंहके साथ तालीकोटकी लड़ाईमें विशेष भाग लिया।करणसिंह इस लड़ाईमें मारागया;

चोलराज. परन्तु बादशाह ने उसके पुत्र चोलराज को सात हजार घुडसवारों का सरदार बना दिया और रायचूर के पास दो नदियों के बीच की कुछ भूमिके साथ तोरगल का प्रान्त दिया। उस समय मुधोल की जागीर में रामनगर नाम का एक परगणा(महाल)था चोलराज ने उसका नाम बदल कर चोलराज पत्तन रख दिया। क्योंकि पहिला नाम उसके शत्रुके नाम पर था।

विजयनगर राज्य के नाश के अनन्तर बीजापुर की सेनाओं को कर्नाटक जीतने का अच्छा मौका मिला। बीजापुर के बादशाहोंने इस स्थिति से लाभ उठाया और एक के बाद एक प्रान्तको वश में कर लिया। इसके कुछ समय

बाद गोआ के विरुद्ध एक धावा भेजा गया और अंकुशखान विजयनगर के आस पास के लुटेरे सरदारों को जीतने के लिये नियुक्त किया गया। अंकुशखान लगातार अपने प्रयत्न में लगा रहा और उसने शत्रुके एक खास स्थान को वशमें कर लिया। उसके बाद बंकापुर पर आक्रमण किया गया और तत्पश्चात् शिराके विरुद्ध भी एक धावा बोल दिया गया। इस धावे में चोलराज और उसका चाचा भीमसिंह बहुत कामके निकले। बंकापुर के घेरेमें हि. ९८२-८३ में भीमसिंह मारा गया। शिराका धावा भी सफल हुआ क्योंकि उस स्थानके लुटेरे सरदार ने संधिके लिये प्रार्थना की। तब बीजापुर की सेनाओं ने दक्षिण के लिये प्रस्थान किया। चोलराज ने इन प्रान्तोंमें शान्ति स्थापन करनेमें अमूल्य सहायता दी। इसके बदलेमें चोलराज को अपनी सेनाके खर्च के लिये विजयनगर प्रान्तमें छब्बीस और शिराके उत्तरमें चालीस गांव मिले। सन् १५७८ ईसवी (हि. ९८६)में चोलराज एक लड़ाई में मारा गया, जब कि वह विजयनगरके आसपास एक बलवेको शान्त करने में लगा हुआ था।

चोलराजको विजयनगर और शिरा-प्रान्तमें जागीर मिलना.

चोलराजकी मृत्यु.

उसके बाद उसका ओहदा तथा पद उसके पुत्रों को मिला। चोलराज सात हजार घुडसवारोंके ऊपर था। उसके तीनों लड़के पिलाजी, बल्लमसिंह और कनोजी अपनी सेनाओं समेत कर्नाटककी फौजसे जा मिले। कर्नाटक प्रान्त

चोलराजके पुत्र.

के अतिरिक्त और किसी बातमें हमें चोलराज के पुत्रों का वर्णन नहीं मिलता। उन्होंने मंजनखानके आधिपत्य में १५९३ ई. में शिरा और मैसूर प्रान्त के थानोंके जीतने में अपनी वीरता सिद्ध की। कीन्हीं कारणों से आक्रमण बीच में ही छोड़ देना पड़ा और बलवाई लुटेरे सरदार बादशाही पलटन को हराकर भगाने में सफल हुए (ई० १५९५ हि.१००५) यह देखकर कि सम्पूर्ण बादशाही सेना और प्रान्तोंमें लगी हुई है इन लुटेरों ने अदोनी प्रान्त में वहां के मुख्य थाने को जा घेरा। उस समय घोरपड़ों की अदोनी प्रान्त की सारी जागीर अर्थात् गुत्ती-के पास का सारा भाग शत्रुके हाथ में चला गया था। यह सुनकर कि बादशाही फौजें लौट रहीं हैं लुटेरोंने घेरा हटा लिया और अपने देशों को भाग गये। पिलाजी, बल्लमसिंह और कनोजी उन्हें भगाने में सबसे आगे थे और इस प्रकार उन्होंने अपनी जागीर को वापिस ले लिया। इसके पश्चात् बीजापुर के प्रदेश केवल दक्षिण की ओर ही बढ़ाये गये। निजामशाही के विरुद्ध लगातार मुगलों के हमले होते रहने के कारण इस राज्यकालमें निजामशाह और आदिलशाहों के बीच हमेशा होनेवाली लड़ाइयाँ बहुत कम हुईं और परिणाम यह हुआ कि जागीरदारों को अपनी जागीरों की ओर ध्यान देने का अवसर मिल गया।

चतुर्थ अध्याय ।



प्रतापसिंह ।

प्रतापसिंह अर्थसचिव बनाया गया.

पिलाजी की मृत्युके पश्चात् प्रतापराव को अपने पिता का सेनापतित्व (मनसब) मिला वह बहुत शीघ्र राजा का प्रेममात्र बन गया और इब्राहीम आदिलशाह ने उसे आय विभागमें एक बड़े पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्रतापराव के पुत्रने अपने पिता का ओहदा १६४५ई. में प्राप्त किया और एक लम्बे काल तक आय विभाग के प्रधान मन्त्री के पद पर काम किया।

मुगलों द्वारा बीजापुर का आक्रमण.

प्रतापसिंह घोरपड़े ने मुगलों से लड़ाई लड़ने में बहुत वीरता दिखाई । मुगलों ने १६३६ई. में निजामशाही के प्रदेशों को जीत लिया और बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण किया। गोलकुण्डे का कुतुबशाह पहिले ही वशमें कर लिया गया था परन्तु आदिलशाही प्रदेश मुगल विजयता के लिये सीधी बात न थी । उसने देखा कि उसके जीतने के लिये उसे जान और माल का ख्याल छोड़ कर लड़ाई पर लड़ाई लड़नी पड़ी ।मुगलों ने सेना को तीन भागोंमें विभक्त कर बीजापुर को तीन ओर से आक्रान्त किया। मुगलों के इस आक्रमण के समय प्रतापसिंह और उसका पुत्र बाजीराजा बीजापुर की ओर से लड़ रहे थे।अपने पास केवल थोड़ी

सी फौज होने से मुगल सेनाओं के साथ इन्हें छिप छिप कर लड़ना पड़ा। मुगल पलटनें बीजापुर के पास तक पहुँच गई थीं पर बीजापुर की सेना ने नहरें खोद कर उनका आगे बढ़ना रोक दिया। ऐसे संकट के समय पर सन्धि घोषित कर दी गई और दोनों बादशाहों ने लड़ाई रोक दी। सन्धि में यह तै हुआ कि बीजापुर की पलटनों को शहाजी की सेना के लुटेरे झुण्डों को गिरफतार करने में मुगल फौज की सहायता करनी होगी। प्रतापसिंह और उसका पुत्र बाजीराजा रणदुल्लाखां के साथ इस कार्य के लिये निश्चय किये गये। इन तीनों सेनानायकों की सेनाओं ने जुन्नर और शिवनेरी समेत कई किलों को घेर लिया और लुटेरों को सब तरफ से दबा दिया। उन्हें सन्धिकी प्रार्थना करने के लिये बाधित होना पड़ा और इस प्रकार निजामशाह मुगल बादशाह को सौंप दिया गया। शहाजीने बीजापुर के बादशाहों के यहाँ नौकरी कर ली और मुरारपंत के प्रभाव के द्वारा धीरे २ बीजापुर दरबार में बढ़ने लगा।

शिवाजी भोंसला का बीजापुर में नौकर होना.

जागीरका विभक्त होना.

ईसवी सन् १६३७-३८ में शहाजीने रावराजा प्रतापसिंह घोरपड़े बहादुर के प्रदेशोंमें हिस्सा लेनेका बीजापुर दरबारमें प्रयत्न आरम्भ किया। उसने प्रतापराव राजा के चचेरे भाई बहिरजी को भी प्रतापसिंह घोरपड़े की जागीरमें हिस्सा लेने को बीजापुर दरबारमें शिकायत करने के

लिये उकसाया । शहाजी भोंसला को इतनी सफलता हुई कि वह पूना और सुपा प्रान्त को जो उसे अहमदनगर के निजामशाहों से जागीरकी तौरपर मिले थे रख सका और जागीरका एक भाग प्रतापराव राजा के बन्धुओंको दो हजार सिपाहियों के खर्चे के लिये मिल गया ।

इन बन्धुओं के बीच में पारस्परिक झगड़ा शान्त करने के लिये बादशाहने उनके वंशागत अधिकारोंमें एक दूसरेसे परिवर्तन कराया किन्तु यह आपसका परिवर्तन मित्रता का संबन्ध स्थापित करनेमें कभी सफल न हुआ।

इसी समय की बात है कि दक्षिणके लुटेरे सरदार और चन्द्रगिरिमें राज्य करनेवाले विजयनगरके राजाओं के वंशज बुरीतरहसे खदेड़े और तंग किये जारहे थे। कुतुबशाह की फौज इस प्रान्तमें पूर्व तथा दक्षिण की ओर से बढ़ने का प्रयत्न ही कर रही थी कि बीजापुर की सेना आगे बढ गई और इस प्रकार बीजापुर का प्रदेश बढाने में सफल हुई । बीजापुर के सरदारों की पलटनें सारे राज्यमें इधर से उधर तक फैल गई। रणदुल्लाखान प्रधान सेनानायक था और बाजीराजा घोरपड़े अपने सेना-विभाग के साथ उसके नीचे नौकरी कर रहा था । चन्द्रगिरीके राजाओं के विरुद्ध इस आक्रमण में श्रीरङ्गरायका बहुत सा प्रान्त बीजापुर के बादशाहों के हाथ लग गया। इसी

समय १६४५ ई. में रावराजा प्रतापसिंह वाई प्रान्त की अपनी जागीरमें परलोक सिधारा। इस बहादुर घोरपड़े की मृत्युके बारेमें एक कहानी है–जब वह वाई प्रान्त की अपनी जागीरमें था, एक बार मृगयाके समय अकेले में कुछ पुरुषोंसे आक्रान्त किया गया। वह उनके साथ लड़ा और एकाकी होते हुए भी उसने अपने कई दुश्मनों को मार दिया, पर एक गोलीने उसे बुरी तरह घायल कर दिया और जब कि वह अपने आदमियों द्वारा वाई की ओर ले जाया रहा था, रास्ते में मर गया। शिलेवाड़ी में उसकी समाधि बनी हुई है। वह नहूजी नाम से भी पुकारा जाता था और किसी २ जगह उसके लिये नवजी नाम भी पाया जाता है।

पञ्चम अध्याय।



बाजीराजा घोरपड़े।

दक्षिण की लड़ाइयां

प्रतापसिंह के बाद उसका पुत्र बाजीराजा अपने पिता की जागीर और नौकरी का काम करने लगा। उसके चचेरे भाई अम्बाजी और मानसिंह कर्नाटक में थे। कुछ समय बाद ही १६४६ ई. में मुस्तफाखान बीजापुर की उन पलटनों का जो कर्नाटक में अपना राज्य बढ़ाने गई थी प्रधान सेनापति बनाया गया। बाजीराजा को इस यात्रे में विशेष तौर पर

भेजा गया था और शाहजी भौंसला भी अपने तीन हजार सिपाहियों के विभाग के साथ इस धावे के साथ था। अन्तूरमें एक घटनापूर्ण और सूनी लड़ाई लड़ी गई जिसमें शत्रुओं की हार हुई। शत्रुओं का प्रधान सेनापति प्रसिद्ध वेल्लूर राज था। मलिकरायन ने भी लड़ाई में अपना जोर लगाया। बाजीराजा घोरपड़े की सेनाने लड़ाई में अपना हिस्सा प्रशंसित रीति से पूरा किया। मानसिंहजी ने रणभूमि पर ही अपने प्राण छोड़ दिये। बीजापूर की विजयी सेना ने अपने सामने से शत्रु को भगा दिया और पूर्वीय समुद्रकी ओर उसका पीछा किया।

जिंजीका किला.

बीजापुरकी सेनाओं ने रास्ते में वेल्लूर ले लिया और जिंजीकी ओर बढी। और उन्हों ने इस किले को घेर लिया तथा लगातार अपना कार्य करती रही। यद्यपि घेरा डाले हुई कई मास हो गये उसे जीतने के कोई असार न दिखाई दिये। सब सेनापतियों को सन्देह होने लगा कि सम्भवतः घिरी हुई सेनायें बाहिर से सहायता पा रही हैं। उन्हों ने बाहिर से शत्रुको सहायता पहुँचाने वाले आदमियों का पता लगाने के लिये गुप्त चर नियत कर दिये। पीछे से पता चला कि घिरे हुए शत्रु शाहाजी भौंसले के शिबिर से सामग्री पा रहे थे। बीजापुर के ब्राह्मण राज-

शाहजीका धोखा देना.

नीतिज्ञ शाहजी राजा भौंसला के द्वारा शत्रुको

सहायता देने लगे। जीता हुआ प्रदेश बहुत लम्बा चौड़ा था और बीजापुर की फौजें सारे कर्नाटक में फैली हुई थीं। कार्यक्षेत्र में नई सेना लाने के लिये बहुत देर हो जाने का डर था और दूसरी ओर यदि घेरा उठा लिया जाता तो शत्रुको सफलता हो जाती। इस स्थिति में प्रधान सेनानायक मुस्तफाखान ने अपने को बड़ी कठिनाइयों में घिरा पाया। उधर शाहजी राजा भी लापरवा ही दिखाने लगा और स्वतन्त्रता से कार्य करने लगा। जैसे ही उसे पता लगा कि उसपर सन्देह किया जा रहा है और नई सेना बुलाई गई है शाहजी विना पूछे ही तथा अपने प्रधान सेनापति की आज्ञा लिये विना ही घेरा छोड़ कर चला गया और यह बहाना किया कि उसकी सेना बहुत दिनों से बराबर काममें लगी हुई है और उसके शिविरमें भोजनादि की बडी महंगी होगई है।

बाजी राजा द्वारा शाहजी की गिरफ्तारी.

यह साफतौर पर पता लग गया कि शाहजी शत्रुओं से मिलने को तैयार था और उपद्रव खड़े कर रहा था। प्रधान सेनापति ने युद्ध-समिति की बैठक बुलाई और एकत्रित हुए सेनानायकोंसे शाहजी राजा को पकड़ने का वैयक्तिक उत्तरदायित्व लेने को कहा। उस समय यह प्रथा थी कि सभाके सामने सुपारी और पान रख दिये जाते थे और वह पुरुष

जो कि खतरनाक कार्य को पूरा करने के लिये तैयार होता था उन्हें उठा लेता था। शाहजी को गिरफतार करने के लिये सभा में कोई भी आदमी आगे न बढ़ा और अन्त में बाजीराजा और उसके चचेरे भाई अम्बाजी राजा ने इस काम को अपने हाथ में लिया। शाहजी की सेना से खाली की गई घेरे की जगह को उन्होंने भर दिया और वे दो हजार चुने हुए घुड़सवारों के साथ शाहजी की सेना को ढूंढ़ने निकले। प्रातःकाल के समीप उन्होंने शाहजी की सेना को देखा जो कि पीछा करनेवालों की फौज को देखते ही डर गई और भागने लगी। इसी गड़बड़ में शाहजी सुरक्षित ही भग गया। बाजीराजा ने शिबिर का प्रबन्ध अम्बाजी और यशवन्तराव असदखान को सौंपा और स्वयं कुछेक चुने घुड़सवारों को साथ लेकर शाहजी का पीछा किया। अन्ततः उसने शाहजी को गिरफतार कर मुस्तफाखान को सौंप दिया। इस पीछा करने के बीचमें शाहजी के एक हजार आदमी मारे गये। बाजीराजा के इस काम से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। विना किसी लूट लाट के ही शाहजीका सारा सामान बादशाही सेना के हाथ लग गया। इसके बाद शाहजी कैदी की तरह उसके सारे सामान के साथ बीजापुर भेज दिया गया। इस प्रकार भागनेका बहाना कर रातके समय

Busatin Salatin & Persian family account & letters.

बादशाही फौज पर धावा करनेकी तद्वीर को पूरा करने में शाहजी असफल रहा।

थोड़ेही काल बाद किला और लम्बी चौड़ी भूमि बीजापुर के बादशाहों के कब्जे में आगई। कर्नाटक का धावा मुहम्मद आदिल-शाह की मृत्यु तक जारी रहा। बादशाह की मृत्यु पर सारे सेनापति कर्नाटक से वापिस लौट आये। इसी बीचमें मुगल बादशाह शाहजहां ने औरंगजेब और मीरजुमलाके नेतृत्व में बीजापुर को जीतने के लिये एक महती सेना भेजी।

बीजापुर दरबारकी स्थिति.

बीजापुर का दरबार अपने सरदारों के बीच एकता का घमण्ड नहीं कर सकता था।बडेरसे-नापति एक दूसरे से वैर रखते थे,प्रत्येक जागी-रदार अपनी जागीर का सुप्रबन्ध करनेमें लगा हुआ था।जब कि सेनायें दक्षिण में गई हुई थीं तब उन जागीरदारों की जागीरों के झगड़े जो कि लड़ाई को गये हुए थे उन सूबेदारोंसे तै किये जाते थे जिनके कि सूबेमें वे जागीरें स्थित थीं। किन्तु यह देखकर कि सूबेदार लोग मनमाना काम करते थे और जागीरों के नुक-सान का भी ध्यान न रखते थे जागीरदारों ने अपनी आधी २ सेनायें अपनी २ जागीरमें रखने का निश्चय किया परिणाम यह हुआ कि लड़ाई के मैदान में सेना की कमी हो गई। घोरपड़ों की तरह बहुत थोड़े सेनापति थे जो अपनी सेना की पूरी शक्ति के साथ लड़ाई के

मैदान में जाते थे। लुटेरों ने देखा कि फौजें बीजापुर लौट गई हैं और इस स्थिति से अपनी खोई हुई जमीनों को वापिस लेने का फायदा उठाया। शाहाजी भोंसला ऐसे कामोंमें सबसे बढ़कर था।

मुगलों का आक्रमण.

प्रबन्ध की इस कमी के कारण बीजापुर की सेनायें मुगल फौजोंसे पूरी तरह न लड़ सकीं। सरदारों की एक बड़ी संख्या गुप्तरीतिसे मुग़लों की सहायता करने लगी और बहुत से तो प्रकट रूप से ही मुग़लों की सेना में जा मिले। इस छलयुक्त व्यवहार के कारण बीजापूर दरबार स्वाभाविक तथा ही सफल नहीं हो सकता था, मुग़ल सेना ने बेदर को घेरा और जीत लिया लेकिन इस सफलतामें मुग़लों के बहुत से आदमी मारे गये। उन्हें किलेमें अगणित सम्पत्ति और बहुत सा लडाई का सामान मिला। फिर मुगलसेना गुलबर्गे की ओर बढ़ी और उसकी बीजापुर की सेनासे मुड़भेड़ हुई। गुलबर्गा के पास कई लड़ाईयां हुईं। मुगलोंने कल्यानी के किले की ओर प्रयाण किया और उसका घेरा डाल दिया। बीजापुर की सेना घिरे हुओंकी सहायता के विचार से धीरे २ कल्यानीकी ओर बढने लगी। एक दिन प्रातःकाल बाजीराजा और अम्बाजी राजा ने देखा कि एक राजपूत सेनापति मुगलसेनाके लिये अनाज लिये जा रहा था। उन्होंने उस सेनाओं

कल्यानी का घेरा.

को भोजनसामग्री पहुँचाने वालों पर आक्रमण किया और सारी सेनाको गिरफ्तार कर ही लिया था कि औरंगजेब जो कि दक्षिण का सुबेदार था जल्दीसे उनकी सहायता के लिये आ पहुँचा। उसने उस समय के लिये घेरा उठा दिया और सारी फौज के साथ बाजी राजा की सेना को आक्रान्त किया। उस संकट पूर्ण दिनमें बाजी राजा के केवल १५०० घुड़सवार बच रहे थे। मुगलों की बड़ी फौज के सामने बाजीराजा के घुड़सवारों की गिनती कुछ भी नथी फिर भी छोटी सी सेना ने मुगल फौज का वीरतापूर्वक सामना किया और बहुतसे शत्रुओं को मार दिया। उस दिन अफजल खान की सेना ने सबसे अधिक वीरता दिखाई। हत्या-संग्राम सायंकाल तक रहा तब प्रधान सेनापति खान मुहम्मद ने लौटने की आज्ञा दी,इसके पश्चात् ही सन्धि की बातचीत होने लगी और उसके बाद कोई लड़ाई नहीं हुई। कल्यानी के घेरेमें मुगलों की बड़ी हानि हुई। उनके बहुत से प्रसिद्ध सेनापति युद्धक्षेत्रमें मारे गये। मुगल सूबेदार औरंगजेब ने युद्ध रोक दिया और शान्ति की घोषणा कर दी।

शिवाजीका-मुधोलकेविरुद्ध प्रयाण और बाजी-राजाकावध.

जब कि विजापुरकी सेनायें इस लड़ाईमें लगी हुई थीं दक्षिणमें उपद्रव खड़े हो गये। हि.१०७० में शिवाजी अफझुलखान के विरुद्ध अपने उपाय में सफल हुआ और दक्षिणमें उ-

सका भाग्य चमक उठा । उसके विरुद्ध भेजा हुआ दूसरा आक्रमण भी शिवाजी ने असफल कर दिया और उसने पन्हाले का किला ले लिया । शिवाजी को वश में करने के लिये बाजी राजा नियुक्त किया गया। बाजी राजा एक दिन मुधोल में ठहरनेके विचार से अकेला ही आगे चल दिया और सेनाको पीछे से आने को छोड़ दिया । शिवाजी जो कि बाजीराजा की हरकतों को ध्यान पूर्वक देख रहा था एक सेनाके साथ बीच रात में मुधोल के लिये चल पड़ा । किले के रक्षकोंने समझा कि यह सेना बीजापुर की फौजका अगला हिस्सा है और किले के फाटक खोल दिये । शिवाजी सीधा राजमहलकी ओर दौड़ा चला गया । उसे महल के एक एक कोने का पता था; इस लिये वह अन्दर के उस कमरे तक चला गया जहां बाजीराजा घोरपड़े सो रहा था । उसने एकदम बाजीराजा के विरुद्ध तलवार खींच ली और उसे उसी समय वहीं मार दिया, यद्यपि अस्त्ररहित शत्रु को मारनेके लिये उसकी भर्त्सना की गई (हिजरी सन् १०७२) । इसके बाद बाजीराजा की चारों रानियां और छे पुत्र अन्य सब पुरुष या स्त्री सम्बन्धियोंके साथ मार दिये गये और महलमें आग लगा दी गई । यह कार्य पूरा कर शिवाजी पन्हाले को लौट गया क्योंकि किले की सम्पूर्ण सेनाको भावी आ-

पत्ति का कुछ भी ज्ञान न था इस लिये आक्रमणकारी शत्रुके मार्ग में कोई विघ्न न खड़े किये जा सके।

शिवाजी से लड़ने के लिये दूसरा सेनापति भेजने से पूर्व बहुत सा समय व्यर्थ गया। बाजीराजाके बाद आक्रमण का नेतृत्व खवाखान को सौंपा गया। इसप्रकार शिवाजी यदि पूरी तरह नहीं तो कुछ अंश तक बाजी घोरपडेके वंश को नष्ट करनेमें सफल हुआ।

अली आदिलशाह ने बाजीराजा की स्त्री और दो बच्चोंको जो उत्तरीय भारतमें धीरमें रह रहे थे बुला भेजा--धीरमें बाजीराजा की रानी का घर (मैका) था। अलीआदिलशाहने उन्हें अपनी रक्षामें ले लिया और उन्होंने उनके पिता के सारे सम्मान और देश दे दिये।

षष्ठ अध्याय।



बाजीराजा का पुत्र मालोजी।

बाजीराजा के दोनों पुत्र अर्थात् मालोजी तथा जयसिंह दक्षिणके इतिहास में प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। दोनों भाई बालिग होने तक जब कि वे अपने पिता के मंत्रित्व के कामों को देखने लगे, बादशाह के पास रहे। क्योंकि उन्होंने अपने आपको बीजापुर फौज के सेनापति की हैसियत में चमकाने में देर न की। वे अपने समय के आदिलशाहके सरदारोंमें सबसे प्रमुख समझे जाते थे। दोनों भाई बीजापुर की ओरसे एकबार तो अकेली मुगलसेना से और फिर मुगल तथा शिवाजी की मिली हुई फौजोंसे लड़े। अली आदिलशाह बाजीराजा की अनुपम राजभक्ति और उसके पुत्रों की वीरता को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और खुशी में उनकी सारी जागीर घोरपड़ों के अलग राज्य में परिवर्तित कर देदी (हिजरी सन् १०८१)। फिर भी घोरपडे सात हज़ार घुड़सवारोंके सेनापति रहे आये जिनके व्यय के लिये उन्हें और प्रान्तों में जागीरें मिलीं।

शिवाजी से लड़ाई.

मिर्झाराजा जयसिंह द्वारा बीजापुर के प्रसिद्ध आक्रमण के समय मालोजी और शङ्करजी दोनों घोरपड़े भाई अपनी वीरता

के कामों के लिये प्रसिद्ध हो गये। जब यह आक्रमण समाप्त हो गया, बीजापुर की फौजोंको शिवाजी जो, कि मुगलों के साथ मिल गया था,से लड़ना था। इस लड़ाई के अवसर पर बीजापुर का बादशाह स्वयं अपनी सेनाओं के आगे बढ़ा। बीजापुर की फौज के कत्ल से कुछ समय के लिये शिवाजी दबा दिया गया। वेनप्रान्त की जागीरमें शिवाजी के साथ एक खूनी लड़ाई हुई। तसगांव की लडाई में शङ्कर जी मारा गया इसतरह बीजापुर के विरुद्ध जयसिंह का आक्रमण निरर्थक कर दिया गया और आदिलशाह राजघराने पर आई हुई आपत्ति दूर कर दी गई। जयसिंह के आक्रमण के बाद द्वितीय अली आदिलशाह के राज्यकाल में शिवाजी के प्रदेश बीजापुर सेना द्वारा सफलतापूर्वक आक्रान्त किये गये और बीजापुर के बादशाह के अधिकारमें इस तरह बहुत से विशेष स्थान आगये। अली आदिलशाह ने कर्नूल के शिद्दीको भी वश में कर लिया और इस प्रकार अपने राज्य को स्थिर,मजबूत तथा शानदार बना दिया। मुख्य मन्त्री अब्दुल अहमदने अपना काम राजभक्ति और ईमानदारी के साथ किया। इससे यह आशा की जाने लगी कि बीजापुर का राज्य जो कि प्रायः नष्ट कर दिया गया था, फिर अपने पुराने ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा।

शङ्करजी की मृत्यु.

यह कहा जा चुका है कि शङ्करजी तसगांव के पास शिवाजी से लड़ते हुए ई० १६६६-६७ में मारे गये थे। मालोजी ने सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और राज्य के अनेक कामों के मुख्य कर्ता हो गये। फिर जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, मालोजी की सेवाओंसे खुश होकर बादशाह ने बहमनी राजाओं द्वारा पहले जागीर की तरह दिये हुए मुधोल के पांच परगनों को घोरपड़ों का स्वतन्त्र और अलग राज्य माने जाने की अनुमति दे दी। इसके बाद मुधोल के घोरपड़े अपने राज्य में सबसे बड़ी शक्ति हो गये और उसके लिये उन्हें और किसी के प्रति राजनिष्ठा रखने की आवश्यकता न रही।

मुधोलराज्य का अलग और स्वतन्त्र होना.

लेकिन दुर्भाग्य से अली आदिलशाह की असामयिक मृत्यु के कारण बीजापुर के ऐश्वर्य के वापिस आने की आशा निर्मूल हो गई। बादशाह को अचानक ही लक़्वा मार गया, वह खाट में पड़ गया और उसके बचने की कोई आशा न रही। उसने अपने सरदारोंसे उसके बाद उसके युवा पुत्र सिकन्दर को राज गद्दीपर पर बैठाने को कहा। उस की मानसिक शक्ति कम होने लगी और थोड़े दिन में ही वह मर गया।

द्वितीय अली की असामयिक मृत्यु.

अली आदिलशाह के मन्त्री अब्दुलअहमद को अली की इच्छाओं को पूरा करना चाहिये था, लेकिन उसने उत्तरदायित्व लेने से मना

बीजापुर दरबार में गड़बड़ी

कर दिया और इस लिये खवासखान ने अपना कन्धा लगाया। बहुत समय न बीत पाया था कि दरबार में आन्तरिक कलहों के कारण गड़बड़ मच गई। खवासखान ने अली आदिलशाह के छोटे भृत्यों के साथ सलाह कर ली और उनके द्वारा दरबार का प्रबन्ध अपने वश में कर लिया। बड़े २ प्रसिद्ध सेनापतियों को भी उनकी जागीरोंपर अधिकार न दिया गया। इन भीतरी झगड़ों के कारण सब जगह अशान्ति फैली हुई थी। राज्य के शत्रुओं ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। दिल्ली के बादशाह आलमगीर ने अपने मुख्य सूबेदार खानजहान बहादुर को बीजापुर जीतने के लिये भेजा। खवासखान ने सिकन्दरशाह की बहिन दिल्ली के बादशाहके लड़के को ब्याह देने की हामी भरी। उसने शिवाजी से लड़ने के लिये मुग़ल सेनाओं के साथ बीजापुर की फौज भी भेजने की प्रतिज्ञा की। क्योंकि ये दोनों ही प्रतिज्ञायें पूरी न की जा सकीं, खानजहान ने आन्तरिक कलहों से फायदा उठाया और बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। बीजापुर के सेनापति बहलोलखानने बलपूर्वक आक्रमण को रोका और मुग़ल सेनाओं को हरा दिया।

मालोजी को मानखेड़ा की जागीर मिली.

मालोजी ने इस आक्रमण के समय अपने को विशेष तौर पर दिखाया और मानखेडा परगनें की जागीर प्राप्त की।

मुगलों के इस आक्रमण के बाद बीजापुर दरबार में अनेक घटनायें हो गईं। शिवाजी राजा और गोलकुण्डे का बादशाह आबूहुसैन आपस में मिल गये। उन्होंने बीजापुर के प्रदेशों को वशमें करने के लिये मालोजी को अपनी ओर मिलाना चाहा। इस उद्देश्य से उन्होंने मालोजी को उनसे मिलने के लिये प्रोत्साहित किया और यहांतक कि उसे आधा राज्य देनेका वचन दिया। शिवाजी द्वारा लिखित एक पत्र और आबूहुसैन का दूसरा पत्र इस बात की पुष्टि करते हैं।

बम्बई सरकार के मन्त्रि-विभागमें सुरक्षित रखे हुए चुने हुए पत्र, सन्देशे तथा अन्य सरकारी कागजात की मि. जी डब्ल्यू फोरेस्टकी 'मरहट सीरीज' प्रथम जिल्द के पृष्ठ ६६६-६७ पर शिवाजी के पत्र का इस प्रकार वर्णन है—

भोंसला घोरपड़े मुधोलके राजा।

भोंसला वंश की इस शाखा का प्रथम प्रामाणिक वर्णन मालोजी घोरपड़े को लिखे गये। शिवाजी के पत्रमें है, जबकि वह (शिवाजी) गोलकुण्डाके बादशाहके साथ सम्बन्ध कर रहा था।

यह लेख्य पत्र अन्य अनेक फारसीके कागजों के साथ गोविंदराव घोरपड़े के पास हैं। इसकी प्रामाणिकता के बारे में जब उसको उस समय के अन्य लेख पत्रोंसे मिलाया

जाता है थोड़ी देर को भी सन्देह नहीं किया जा सकता। यह पत्र शिवाजी की ओर से है और उसमें उन सब भिन्न २ कारणों का वर्णन है जिनसे भोंसला और घोरपडोंमें चिरस्थायी वैर हो गया था और साथ ही मालोजीको सदातनी शत्रुता रखने की हानियां तथा बीजापुर के पठानमन्त्री (जिसने कि युवाराजा सिकन्दर को वश में कर रक्खा था,) का साथ छोड देने के लाभ दिखाते हुए उस वैर को शान्त करने पर जोर दिया है। इस समय शिवाजी ने मालोजी को एक बराबर का मानकर सम्बोधित किया है और वह (मालोजी) अवश्य ही आदिलशाह के दरबार के बड़े से बड़े सरदारों में से होगा। इस वंशने प्राचीन कालमें राजाका खिताब धारण किया है जो कि सम्भवतः बीजापुरके राजाओंने दिया था। साथ ही उसे यह भी अधिकार प्राप्त थे कि इस वंशका मुखिया केवल मुजरा (एक निश्चित प्रथासे राजाको प्रणाम करना) करनेसे ही मुक्त न किया गया था अपितु राज के उत्सवों पर उसे चँवर डुलवाने का अधिकार भी प्राप्त था।

बीजापुर बहलोलखान पठान के कब्जेमें.

लेकिन मालोजी उपरोक्त प्रलोभन का शिकार न बना। इस कठिन समय में भी उसने अपने स्वामी की भक्तिपूर्वक सेवा करने की अपने वंश की पुरानी प्रथा को जारी रक्खा। इन दिनों में पठान सरदारों के भाग्य

और उनकी सेनायें बढ़ी हुई थीं। दक्षिणी, राजपूत और कर्नाटकी सरदारों की कुछ परवाह न की जाती थी। पठान के विचित्र आचरण पर प्रायः सभी सरदार बुरा माने हुए थे और वे अत्यन्त शीघ्रता के साथ या तो शिवाजी की या मुगलों की सेना से जा मिले थे। कुछ अपनी २ जागीरों को चले गये और कार्य रहित होगये केवल मालोजी राजा घोरपड़े मानिकजी और सर्जेराव ही अपने नमकमें सच्चे निकले और अपने बादशाह की सेवा के लिये हमेशा तत्पर रहे। इस तरह बीजापुर राजवंश का पतन हो रहा था।

कुछ समयके बाद अबुलहसन कुतुबशाह के बीच में पडनेपर पठान दबा दिये गये और बहलोलखान तथा उसके पठान अनुयायी अन्तमें बीजापुर के बाहिर भगा दिये गये। सिद्दी मसूद का मुख्य मन्त्री होना. कुतुबशाह की ओर से मदन्ना का भाई अकन्ना बीजापुर दरबार में राज्य के कामों में सहायता करने के लिये नियुक्त किया गया और सिद्दी मसूद ने मुख्य मन्त्री का पद स्वीकार किया। यह कहा जा सकता है कि सिद्दीमसूद बिल्कुल शक्तिहीन था; क्योंकि बहलोलखान के अनुयायी पठान अब भी राज्यमें उत्पात मचा रहे थे। इस प्रकार उन्हें राज्यके मामले में विघ्न डालने का अवसर मिल गया। उन्होंने अपनी शर्तें प्रस्तुत कीं और चाहा कि उनकी सारी पुरानी माँगें पूरी कर दी जायँ। स्थिति

के अनिश्चित होनेसे कोई भी कुछ नहीं कर सकता था। सेना कहाने लायक वहाँ कोई चीज न थी और सेना तैयार करने की कोई सम्भावना भी न थी। आखिरकार सिकन्दर आदिलशाह की बहिन बादशाह बीबी औरंगजेब के पुत्रको अपने आपको समर्पित करने के लिये बलात् भेजी गई।

मुगलों का आक्रमण.

मुग़ल फिर भी सन्तुष्ट न हुए और उन्होंने अपना आक्रमण नई तौर पर शुरू किया। मसूद ने शिवाजी से सहायता की याचना की उसने एकदम अपने सेनापति को बीजापुर की सहायता के लिये भेज दिया और स्वयं उसने अपनी बड़ी सेना के साथ लूट मार मचाते हुए मुग़ल प्रदेशों पर आक्रमण किया। इससे मुग़ल सेनापति दिलेरखान की तदबीर नष्ट हो गई। बीजापुर के घेरे को डाले रखकर उसकी सेना कुछ न कर सकी। आन्तरिक झगड़ों के कारण किले में कोई सेना न थी कुछ सेनायें जो कि सेनायें कही जा सकती थीं; मालोजी घोरपड़े की थीं। ये सेनायें जल्दी से बाहिर निकल आई और मुग़लसेना पर दो तीन बार आक्रमण कर उसके बहुत से आदमी मार दिये। घोरपड़ा घुड़सवारों ने दिलेरखान का सागर तक पीछा किया और उसकी सेना तथा सहायकों पर आक्रमण किया। आगामी दो साल तक पूर्वापेक्षा अधिक शान्ति हो गई यद्यपि आन्तरिक

घोरपड़ों का काम.

छोटे छोटे झगड़े कभी भी बन्द न हुए। शिवाजी मर चुके थे और उस ओर से कोई उपद्रव न था। कुछ काल बाद ही १६८२ ई. (हि०) १०९४ में मुगलों का दूसरा आक्रमण शुरू हुआ। राजकुमार अजममुगल फौज का सेनापति था। उसने भूमि के बड़े बड़े भागों नष्ट भ्रष्ट कर दिये परन्तु किसी कारण से बीजापुर राजधानी पर आक्रमण न किया।

औरङ्गजेब का आक्रमग.

गत तीन चार वर्षों में राज्य के दोषपूर्ण बुरे प्रबन्ध के कारण सरकार शक्तिहीन होगई थी औरङ्गजेबने अपना आक्रमण १६८५ ई. में शुरू किया उसने लड़ाई का कोई बहाना ढूंढ़ निकाला और बीजापुर के प्रदेशों के आक्रमण के लिये अपने सेनायें भेज दीं। बीजापुर की सेनाने दो तीन बार सफलतापूर्वक मुगल फौजों पर आक्रमण किया। इन हारों के होते हुए भी मुगल फौजें बिना रुकावट के आगे बढ़ती गईं और अन्तमें स्वयं शहर के परकोटे तक पहुँच गईं। यद्यपि किला घेर लिया गया था, फिर भी मालोजी राजा और अन्य सरदार किले को छोड़ और अपनी सेना को साथ ले सके और उन्होंने मुगलों पर आक्रमण किया। वे दो बार मुगल फौजों की भोजन सामग्री लूट कर उनको तंग करने में सफल हुए। मुगललोग धीरे धीरे पर स्थिर रीति पर बढ रहे थे। घेरा भी पूरी सावधानी से डाला गया था। घिरे हुए सरदारों के घोड़े

खाद्य--पदार्थों की कमी से मरने लगे और कुछ समय बाद एक भी घोड़ा न बचा।

बीजापुरका समर्पण.

कुछ आदमी बीजापुर को शत्रुओं को सौंप देने को सोचने लगे। सूरजखाँन ने बादशाह को वचन भेजा कि वे सब सरदारों की अनिच्छा होने पर भी अपने आपको शत्रुओं के समर्पण कर देंगे। इस प्रकार १६८६ ई. (हि. १०९८) में बीजापुर का राज्य मुगलों के हाथ में चला गया। मुगलों ने इन सब सरदारों को जो कि समर्पण के समय उपस्थित थे अपनी नौकरी में ले लिया। उनके ओहदे उसीप्रकार रक्खे गये मालोजी राजा जब बीजापुर जीत कर घिरे हुए शहर से बाहिर चला गया था-उसे भी मुधोल से बुलाया गया और बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया गया। उसका प्रदेश और उसके सम्मान पद पूर्व की नाईं प्रतिष्ठित रहे। मालोजी राजा को उन मरहट्टा और लुटेरे सरदारोंके विरुद्ध धावा बोलनेको भेजा गया। जो इस संकटपूर्ण समय में दक्षिण की ओर उत्पात मचा रहे थे। उसने अपने पांच सात हजार घुड़सवारों को लेकर मुगल फौज के साथ आक्रमण किया मिली हुई सेनाओं ने प्रथम गोलकुण्डा की ओर प्रयाण किया। गोलकुण्डा के जीत लेने पर फौजों को दक्षिण की ओर बढ़ने की आज्ञा हुई जहाँ कि मरहट्टे लोग लूट मार मचा रहे थे। रुहेलखान ने अदोनी को घेर

लिया। दक्षिण की ओर कुर्मकुण्डा में मरहट्टोंकी एक बड़ी फौज़ ने ज़ुलफिकरखान की सेना पर आक्रमण किया पर उसकी छोटी सेना ने मरहट्टों की बड़ी सेना को हरा दिया । प्रायः सारे ही दक्षिणी सरदार मुग़ल बादशाह की नौकरी में आगये ।

मुगल सेनापति ज़ुलफिकर खानद्वारा डाले गये जिञ्जी के घेरे के समय मालोजी ने अपने सेनाभाग के साथ मुगलझण्डे के नीचे काम किया था। ज़ुलफिकरखान के संदिग्ध वर्त्ताव को देखकर औरङ्गजेब सोचने लगा कि यह काम राजकीय वंश के किसी राजकुमार को सौंपना चाहिये और राजकुमार कामबख़्श एक बड़ी सेना के साथ भेजा गया । मालोजी को जो कि ज़ुलफिकरखान के नेतृत्व में ही अपनी वीरता के कारण प्रसिद्ध हो गया था, रावदलपत बुंदेला, रावगोपालसिंह चन्दावत और सिद्दी सलीमखान के साथ यह काम सौंपा गया कि वह ख़ज़ाने के साथ रहें और मुग़ल सेनाओं के भोजनादि की रक्षा करें ।

मुग़ल फौजों के उनके मुख्य स्थान को लौट जाने पर मुग़ल सूबेदार की आज्ञानुसार मालोजी मरहट्टों के झुण्डों से किये जानेवाले नुकसान से मुग़ल प्रदेशों की रक्षा करने में लगा रहा। कुछ समय बाद मालोजी १७००ई० में मर गया और उसका पुत्र अखयजी उसका

उत्तराधिकारी हुआ। बीजापुर राज्य में उसके उन्नतिके दिनों के सबसे बड़े सरदारों में होने से मालोजी का भी मुग़लबादशाहों द्वारा वही आदर सत्कार हुआ था। यह बात कि वह मरहट्टा राजसंघ से नहीं मिल गया था। उसकी राजभक्ति का पर्याप्त प्रमाण था।

अखयजी. मुग़ल बादशाह मालोजी के पुत्र अखयजी का और भी अधिक विश्वास करते थे। वह बीजापुर का गवर्नर था। एक सनद इस बातकी साक्षी है कि जब अखयजी गवर्नर था तब उसे पांच हजार घुड़सवार रखने के लिये भूमिप्रदेश मिला हुआ था और उसके २५०० शरीररक्षक थे जिनका व्यय बादशाही खजाने से मिलता था। इसके अतिरिक्त गवर्नर को ५०००, वेतन मिलता था। ऐसा प्रतीत होता है कि बीजापुरमें रहते समय अखय अथवा उसकी सेनायें नवाब मुस्तफाखानकी बडी सराय में रहती थीं,जोकि इस समय जिला जेल के रूप में परिवर्णित कर दी गई हैं। वह सराय अभी पास के समयतक अखय की सराय के नाम से मशहूर थी।

यह अखयजी के समय की बात है कि प्रसिद्ध धनाजी जादव के पुत्र चंद्रसेन ने कर्नाटक में चौथ इकट्ठी करने और घोरपडे वंश की भूमि को आक्रान्त कर सन्ताजी घोरपडे के वंश से बदला लेने के लिये-इन दो

उद्देश्यों से कर्नाटक के विरुद्ध प्रयाण किया। गजेन्द्रगढ़ और गुटी की अन्य शाखाओं समेत अखयजी तथा सन्ताजी के घोरपड़े वंशों ने अपना एक संघ स्थापित कर चंद्रसेन का कड़ा मुकाविला किया। अन्त में उसे घोरपड़ों को उनकी जागीर के रखनेमें तंग किये बगेर और शान्त ही छोड़ना ही पड़ा।

उसके बाद दीर्घकाल तक घोरपड़े अपनी मुल्कमें शान्तिपूर्वक रहते रहे। सतारे के शाहू और ताराबाई के पुत्र के पारस्परिक झगड़े के समय वे फिर आगे बढ गये। उस झगड़े में घोरपड़े लोग कोल्हापुर शाखा का पक्ष लेते हुए दीख पडते हैं—जिसका कि मुखिया सम्भाजी था। ग्रान्डडफ निम्नप्रकार से उस स्थिति का वर्णन करता है (पुस्तक, पृष्ठ ३११)

'क्योंकि निजाम उल्मुल्क कोल्हापुर वालों का पक्ष लेता था, सम्भाजी का प्रभाव बढ़ गया और शाहू का घट गया। प्रसिद्ध संताजीके भतीजे बाहिरजी का लड़का और गुट्टी के प्रथम मुरारराव का कनिष्ठ भाई सिद्धजी घोरपडे को सम्भाजी की ओर होनेके लिये उकसाया गया जिस (सम्भाजी) ने सेनापति का पद देकर उसका आदर किया। कपसी तथा मुधोल दोनों जगहों के अन्य भी अनेक घोरपड़े कोल्हापुर दलसे मिल गये।

अखयजी १७३४ ई. में अपनी मृत्युतक बीजापुर का गवर्नर रहा। उसका पुत्र पीरजी उसका उत्तराधिकारी हुआ किन्तु दुर्भाग्य से पीरजी उसके भाई बाजी द्वारा मारा गया। तब उसके बाद पीरजी के युवा पुत्र मालोजी और उसके चाचा बाजी के बीच झगड़ा चला। बीजापुर तथा जागीरों के अधिकार और उन पदों के वेतनों का झगड़ा दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह द्वारा १७३८ ई. में तै किया गया। मालोजी के पक्ष में एक आज्ञा पत्र निकाला गया, जिसके द्वारा वह बीजापुर का गवर्नर नियत किया और साथ ही उसे वे सारे वेतनादि जो उससे पूर्व उसके पिता और पितामह को मिलते थे, मिल गये। कत्ल करनेवाले बाजी ने मरहट्टों का आश्रय लिया। मालोजी की पलटनों से लड़ने में उसका पीछा किया गया और वह मार डाला गया; जब कि वह मुग़ल प्रदेशों को लूटने के उपाय में लगा हुआ था।

सप्तम अध्याय ।



मालोजी-तृतीय ।

वे दिन जब कि मुग़लों के आधिपत्यमें मालोजी बीजापुर का प्रबन्धक बना, दक्षिण में मुग़लों के अनुकूल न थेमरहट्टे पेशवाओं के नेतृत्व में अधिक बलवान होते जा रहे थे। उन्हें दक्षिण में कोई रुकावट न थी । क्योंकि औरङ्गजेब की भ्रम-पूर्ण नीति ने मुसलमानी राज वंशों को नष्ट कर दिया था । बादशाही सेना का मुख्य स्थान उनकी पहुँचसे बहुत दूर था। मरहट्टा-राज्य के सेनापति अपने प्रदेशोंके बढ़ानेमें उचित अथवा अनुचित सब प्रकार से यत्न कर रहे थे । एकबार सतारा दरबार ने शाहू के वंश की पुरानी कर्नाटक की जागीर अपने वंशमें करने का प्रयत्न किया अन्य दूसरे भोंसलों को भी जो कर्नाटक जागीरों में रुचि रखते थे और हिस्सेदार थे, पुरानी जागीरों के पाने में सतारा की सरकार को मदद देने के लिये उकसाने की कोशिश की गई; किन्तु इसके लिये वे सतारा सरकार से मिलने को बिलकुल इच्छुक न थे । उनका यह सोचना ठीक था कि कर्नाटक जैसे सुदूर-वर्ती प्रदेश में जागीर पाना और उसका रखना अधिक कठिन होगा;अच्छा है कि लुटेरे धावों

से वे अपनी आमदनी बढ़ाते रहें। आदिलशाही और कुतुबशाही के अन्त हो जाने से बहुतसे सरदार अपनी सेनाओं समेत बेकाम हो गये। ऐसी स्थिति में प्रत्येक साहसिक सरदार जहां और जब मौका मिला लूट मार करने लगा। केवल दशा के विपरीत होने के कारण कोई भी जागीरदार जो शान्ति से रहना चाहता था; वैसे नहीं रह सकता था। यह स्वाभाविक ही था कि मालोजी इस झगडे में पडे। उसको अपनी जागीर की रक्षा के लिये बहुत से घुड़सवार रखने को विवश होना पड़ा। वह एक स्वतन्त्र राजा था, वह न तो सतारा की सरकार के ही अधीन था और न मुगल साम्राज्य के ही रहा। पिछला साम्राज्य सो तो अब तित्तर वित्तर हो रहा था।

मालोजी का पेशवाओं से मिलना.

पेशवाओं ने पूरी तरह निश्चय कर लिया कि वे अधिक समय तक मालोजी को बिल्कुल उदासीन न रहने देंगे। एक शत्रुकी नाईं वह एक भयंकर प्रतिपक्षी हो सकता था और मित्रता के नाते से एक सहायक मित्र। मालोजी की सहायता और सेवा की पेशवाओं ने याचना की और उसने भी अपने घुड़सवारों की बड़ी पलटन के लिये नौकरी तलाश करने के विचार से और अपने राज्य को उसी सुरक्षित दशामें रखने के लिये पर्याप्त बल पाने के ख्याल से मरहट्ठों को उनके बहुत

से आक्रमणों में सहायता दी। मुधोल के घोरपड़े वंश की कुछ जागीरें मुगल प्रान्तों में भी थीं जैसे कि:-पथरी, परमिने, बरारमें, नूलदुर्ग, अरेकी, तथा अन्य भाग दोआब में । इन जागीरों के बदले में उन्हें मुग़लों की या उनके उत्तराधिकारी निज़ाम की नौकरी करनी पड़ती थी। और दूसरी ओर तरगल के किले तथा आस पास के गाँव जो कि मालोजी ने पलटनों के खर्च के लिये रक्खे थे, चारों ओर से मरहट्टों की भूमि से घिरे हुए थे। इन जागीरों के लिये मालोजी को पहिले मुगलों के लिये घोडों का एक भाग देना पड़ता था, पर पीछे से उन्हीं जागीरों के लिये मालोजी को मरहट्टों की नौकरी करनी पड़ती थी । इस लिये मालोजी को या तो मरहट्टों के लिये सेना देनी थी, या तरगल आदि जिलों की जागीर छोड़नी थी । मालोजी ने मरहट्टा राज्य के नीचे अधीन सरदार की भाँति नोकरी करने की अपेक्षा जागीर छोड़ना अच्छा समझा । फिर भी उसने निश्चित सेना के बदले में निजाम के अधीन मुगल प्रदेश को रखना तै किया। मालोजी ने जागीर के प्रबन्ध के लिये और निजाम की नौकरी को सेना तैयार रखने के लिये अपने लड़के गोविंदराव राजा तथा अपने भाई शंकररावजी को नियुक्त किया।

राक्षसभुवन का युद्ध.

यद्यपि जागीरों का कुछ नुकसान हुआ, परन्तु फिर भी सब बातें ठीक रहीं पर मालो-

जिन्हें अधिक समय तक मरहट्टों के सम्पर्क से वाहिर रहना आत्मघात समझा । पेशवा तो मालोजी की सहायता स्वीकार करने को अत्यन्त उत्सुक थे ही । इन्होंने घुड़सवारों के विभाग से उसका खर्च मिलने पर पेशवाओंकी सहायता करनेका संकल्प किया।मित्र की हैसियतमें मालोजी पेशवाओंके साथ उनके गुजरात के आक्रमण में गया। जबतक पेशवाओं की निज़ाम से लड़ाई न छिडी थी, तबतक सब काम ठीक होता गया।१७६३ ई. के लगभग मालोजी ने रघुनाथराव का एक आक्रमण में साथ दिया। इसी बीचमें मरहट्टों को निजाम के विरुद्ध युद्धघोषणा करनी पड़ी। निःसन्देह मालोजी और उसके पुत्र गोविंदराव के लिये यह स्थिति बड़ी भद्दी थी। यद्यपि कुछेक इतिहासकार यह बताने का प्रयत्न करते और कहते भी हैं कि गोविंदराव का उसके पिता से झगड़ा था और वह पिता के इच्छा के विरुद्ध निजामसे जामिला था,फिर भी पिता और पुत्र बहुत अच्छी तरह से मिले हुए थे। इतिहास बताता है कि गोविंदराव अपने पिता की अनुमति और आज्ञासे निजाम प्रदेश की जागीरों के बदले में निजाम की नौकरी करता रहा था। निज़ाम के नौकर की हैसियत से गोविंदराव को निजाम की ओर से लड़ाना पड़ा था। और एक मित्र के नाते से मालोजी पेशवाओं के साथ था। इस प्रकार हम पिता

और पुत्र को प्रतिपक्षी दलों में पाते हैं । एक क्षीणशक्तिहृदय कदाचित् इस स्थिति को देखकर डर जाता ।

उस युद्ध के जो राक्षसभुवन पर पेशवाओं और निज़ाम के बीच लड़ा गया था आरंभ होनेसे पूर्व ही प्यारे पुत्र ने अपने पितासे पूंछा कि युद्धक्षेत्र में वह (पिता) और उसकी सेनायें किस स्थिति में रहेंगी कि जिससे वह (पुत्र) अपने गतयौवन पिता से मुड़भेड़ करने से बच सके । पिता कुछ अधिक कड़े चित्तका आदमी था—उसने अपने पुत्र को साफ साफ लिखा मेरे पुत्र ! कल बड़ी सेनायें मुड़-भेड़ खायेंगी और विजय सर्व-शक्तिमान् के हाथ होगी । यह सम्भव है कि हम पहिले से प्रबन्ध करके एक दूसरे के सामने आने से बच सकें किन्तु ऐसा करनेसे हम केवल अपने कर्तव्य सेही न गिरेंगे वरन अपने वंश के नाम को भी कलंकित करेंगे। हम दोनों एक दूसरे से बचने का यत्न कर घोरपड़े खानदान को कलंक लगावेंगे ।

गोविंदराव ने अपने पिताके पत्र से शिक्षा ग्रहण की और ईमानदारी से अपना कर्तव्य पूरा करने का निश्चय कर युद्ध के लिये चल दिया। भाग्य में बदा था कि युद्धके भीषण प्रहारों के बीच मालोजी और उसका लड़का आमने सामने आये । एक बार के लिये गोविन्दराव के हृदय में पिता के लिये छिपा हुआ प्रेम

उभड़ पड़ा। उसके पिताने देखा कि पुत्र पिता के विरुद्ध तलवार चलाने से पीछे हट रहा है। मालोजी को अपने कर्तव्य और वंश के मान के अतिरिक्त किसी का ध्यान न था उसने पुत्रसे उसके स्वामी के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण करने के लिये कहा। इस प्रकार राक्षसभुवन में उस स्मरणीय दिनमें सेनाओं ने पिता और पुत्र के बीच लडाई का अद्भुत और अभूतपूर्व दृश्य देखा। दैव दुर्नियोग से मालोजी को अपने पुत्र को घायल करने का गौरव मिला और वह उन घावों से मरगया अपने पुत्रकी मृत्यु के शोक में मालोजी अवश्य रोया होगा, परन्तु हर्षमें भी क्यों कि वह और उसका पुत्र अपने स्वामी के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सके। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि पिता और पुत्रके बीच यह युद्ध १७९५ई०में खर्दा पर हुआ।परन्तु राक्षसभुवन के युद्ध के पीछे १७७०. ई० में निज़ाम ने जो सनद दी थी उसमें गोविन्दराव के पुत्र नारायण राव का नाम है,सनद में गोविंदरावकी मृत्युका ज़िक्र है और इस प्रकार इसमें कोई सन्देह का स्थान नहीं रहता कि मालोजी और गोविंद-राव राक्षसभुवन के युद्ध में लड़े थे।

राक्षसभुवन में निजाम के विरुद्ध लड़ कर मालोजी ने उसे कुछ असन्तुष्ट कर दिया था। पेशवाओं ने देखा कि मालोजी को निजामकी सहायता नहीं मिल रही थी और उसे उसकी

राक्षसभुवन की सेनाओं का पारितोषिक देने के बजाय उलटा चौथ (प्रचलित चतुर्थांश जिस के इकट्ठा करने का अधिकार मरहट्टों को मुग़ल बादशाहों से मिला हुआ था) देने को दबाने लगे। कुछ समय तक मालोजी दृढ रहा अर्थात् न तो वह निज़ाम से मिला और न उसने पेशवाओं को चौथ ही दी। इस समय मालोजी को अपने घर के मनभेदों ने बहुत तंग किया अन्तमें पेशवा लोग मालोजी से चौथ रुपये की शक्ल में नहीं वरन् उसकी वैयक्तिक सैनिक सेनाओं के रूपमें जिनका वे सब व्यय देते थे लेने को तैयार हो गये। इसके पश्चात् हम मालोजी को सदा पेशवाओं की ओर से लडते पाते हैं। अनेक अवसरों पर पेशवाओं ने, जो मालोजी को निजाम की ओरजाने से रोकना चाहते थे, उसे जागीरें देने की प्रतिज्ञा की थी। इनदी, तम्बा और अलमेला के परगने मालोजी को १७७८ई० में सेना के व्यय के लिये दिये गये किन्तु उसकी मृत्युके बाद ही ये वापिस लेकर बापुजी गोखले को दे दिये गये।

वड्गांव का युद्ध.

मालोजी के एकबार पेशवाओं के स्वामी हो जाने पर हम उसे पेशवाओं के आक्रमणों के प्रायः सभी मैदानों में पाते हैं। १७७९ ई० की मरहट्टों और अँग्रेज़ों के बीच हुई वड-गाँव की लडाई में भी घोरपड़े वंश ने अपना भाग लिया था। मालोजी स्वयं बुरी

तरह घायल होगया था। उसका पुत्र राणोजी तलगाँवके पास लड़ाई में मारा गया। मालोजी का भाई शङ्करजी पेशवाओं की ओर से लड़ा। रानोजी के पुत्र वहिरजी राव को पदसलगे का इनाम मिला और शङ्करजी ने बिठगी, बिद्री और तिकोटा के जिले पाये। मालोजी ने पेशवाओं के हाथ से कुछ भेंट लेने को स्वयं मना कर दिया उसने नन्दगाँव और कमथा नाम के दो गांव जोकि उन हिस्सों के देशमुख वतन जागीर के भाग थे मांगे यह उस वंशकी बहुत पुरानी वतन (जागीर) थी और मालोजी को जो कि उसमें अपने भाग का दावा करता था इस अवसर पर सतारा के राजाओं से वह जागीर मिल गई। यह पुराने क्षत्रियवंशों का एक गुण है कि वे एक पुराने अधिकार को चाहे वह कितना भी तुच्छ क्यों न हो कभी नहीं छोड़ना चाहते। घोरपड़े को वंश के इस छोटेसे राज्यके लिये प्रसिद्ध शिवाजी के खानदान से अनेक झगड़े करने पड़े थे। मालोजी जो कि अपने खून का सच्चा था, इन छोटे गाँवों को उस बड़े प्रदेश से जो उसे पेशवाओं से मिल सकता था, अधिक मूल्यवान समझता था।

खर्दा की लड़ाई

मालोजी यद्यपि काफ़ी बूढा हो चुकाथा फिर भी निजाम और पेशवाओं के बीच लड़े गये। १७९५ ई. के खर्दाके युद्ध में लड़ा।

उसके साथ गोविंदराव का पुत्र उसका नाती नारायणराव भी था । मालोजी होलकर के विरुद्ध लड़ी गई एक लड़ाई में १८०२ ई. में घायल होगया । उसके दीर्घकालीन अनुभव, निर्भय साहस, शुद्ध सम्मान, और यथार्थवादित्व के कारण मालोजी पेशवाओं के दरबार में बड़े आदर तथा प्रभाव के साथ देखा जाता था । मालोजी ने पूना को ही, जहाँपर एक बजार अब भी घोरपड़ों के नामपर है, अपना स्थायी निवास स्थान बना लिया था । वह मुधोल की जागीर का प्रबन्ध अपने पुत्र महरराव के हाथोंमें छोडकर अपने पौत्र

महरराव नारायणराव के साथ रहता था । जब महरराव कुछेक लुटेरों से आय एकत्रित करने में रोका गया, तब उसने चाहा कि इन(लुटेरों)को डरा दिया जाय।उसने सौ आदमियों को एक लम्बी कतारमें खड़ा किया और उनके शिर काट दिये । महरराव की इस तथा अन्य निर्दयताओंके कारण मुधोल के मुख्य २ निवासियोंने नारायणराव से रियासत अपने हाथ में लेनेकी प्रार्थना की । नारायणराव आया और बहुत से मुख्य पुरुष उससे मिल गये । कुछेक तो महररावके आदमी भी नारायणराव की ओर चले गये । महाराव स्थिति देखकर कोल्हापुर को भाग गया । उसने मुधोल को फिर पाने की सहायता के बदले में राजा को बहुत सा रुपया देने की प्रतिज्ञा की । कोल्हा-

पुर के कुछ आदमी महरराव के साथ भेजे गये। मुधोल की सेनाओं से रायबाग के युद्धमें हराया गया और महरराव पहिले तो नागपुर को भगगया और वहाँ से ग्वालियर को जहांपर सिन्धिया ने उसका स्वागत किया।

वृद्ध और बहादुर मालोजी-जो कि-पेशवा के दरबार का 'भीष्म' कहलाता था-अपनी मृत्युके पास जा रहा था। उसका सारा जीवन ही मुगल या पेशवाओं की लड़ाईयाँ लडनेमें बीता था। मरहट्टा-राज्यसे मिलने के बाद टीपूके विरुद्ध भेजे गये प्रत्येक आक्रमण में वह उपस्थित था। धारवाड़ को जीतने के समय और शिरामें टीपू की फौजके विरुद्ध उसने अपने आपको विशेष रूप से चमकाया था, मालोजी उन कुछेक गिने चुने आदमियों में से था, जिन्होंने राघोबादादाको उसके मुखपर (सामने) उसे नारायणराव पेशवा के खून का दोषी कहा था। पेशवा के दरबार में मालोजी के प्रभाव से ही बरौदा का गायकवाड़ पेशवाओं के साथ कुछ मतभेद निपटाने में समर्थ हुआ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पेशवा और उसके सेनापति गायकवाड़ के बीच मतभेद को तै करने के लिये एक बाहिर व्यक्ति होतेहुए भी मालोजी की आवश्यकता हुई गायकवाड़ने कृतज्ञता पूर्वक मालोजी को एक लाख पचास हजार रुपयोंकी वार्षिक आयवाली का प्रदेश दिया। फिर जब किन्हीं आन्तरिक झगडों

के कारण परशुरामभाऊ पटवर्धन ने सतारा पर आक्रमण किया, तब मालोजी ने पटवर्धन से सतारे को बचाया । मालोजी को पेशवाओं की ओर से कोल्हापुर के विरुद्ध प्रयाण करना पडा था, उसने उसे लूटा । यह सम्भव नहीं कि थोडी सी जगह में मालो जी की घटनापूर्ण जीवनी की पूरी प्रशंसा की जा सके। उनकी मृत्यु १८०५ ई० में हुई । मालोजी के चार स्त्रियाँ थीं। जिनमें से एक पोलकी तथा एक काठियावाड की राजपूत थी और शेष दो दक्षिण के परमार और महाराष्ट्र सोलंकियों के वंश की थीं । उसकी प्रथम स्त्री से गोविंदराव और महरराव दो पुत्र थे । बाजीराव जो कि बरोदा रियासत का प्रबन्ध करता था, दूसरी स्त्री का लडका था । तीसरी स्त्री का लड़का रानोजी, जैसा पहिले कहा जा चुका है, अंग्रेजों के साथ लडाई में मारा गया था।

मुधोल के घुड़सवार.

कर्नाटक में मुधोल के घुड़सवारों का बड़ा प्रभाव था। वे ऐसी जगह काम आते थे जहाँ पर अन्य सेनायें काम न देती थीं जैसे धारवाड, शिरा तथा अन्य स्थानों में । बहुत से अवसरों पर तो केवल मात्र उनकी उपस्थिति ही शत्रुको सन्धि के लिये विवश कर देती थी। सर चार्ल्स मुनरो कहता है:—"मुधोल के घुड़सवार यद्यपि थोड़े थे, तथापि कर्नाटकमें सबसे अच्छे समझे जाते थे" ।

अनेक बेसमझ ऐतिहासिक मालोजी को निर्दयी पिता बताते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि उसने राक्षसभुवन की लडाई में अपने पुत्र गोविंदराव से लडाई की और उसे भगा दिया था। जैसा पूर्व ही कहा जा चुका है कि युद्ध के प्रारम्भका पत्रव्यवहार तथा अन्य स्थितियाँ सिद्ध करती हैं कि वे दोनों आपस में अच्छे से अच्छे सम्बन्धसे जुडे हुएथे और यह तो केवल कर्तव्य तथा मान था कि वे एक दूसरे से भिडे। उन योद्धाओंका जो कि विश्वास और मानको सबसे बढकर समझते थे आज कलकी अपनी स्वार्थमयी बुद्धि से निर्णय करना भूल है। यह बात कि गोविंदरावका पुत्र नारायणराव अपने बाबा का प्यारा था और सदा मालोजी के साथ रहता था इन समस्त ऐतिहासिकों की बात को झूँठा सिद्ध करती है।

नारायणराव मालोजी राजाका उत्तराधिकारी उसका पौत्र नारायणराव हुआ। मालोजी के जीवन काल में भी राज्य का प्रबन्ध और उसकी निगरानी नारायणराव को सौंप दी गयी थी। निज़ाम ने १७७० ई में एक विशेष सनद द्वारा नारायणराव के लिये उसके खान दान की पुरानी रियासतें जिनका पुराना नाम मिरीत था और जो बरारमें थीं जारी रक्खी थीं। ये रियासतें अब पथरी तथा परभनी प्रान्तों के नाम से विख्यात हैं। नारायणराव के दो स्त्रियाँ थीं बड़ी रानी (पटरानी) सोलंकी वंशकी और

छोटी परमार वंश की थी । बड़ी रानी के दो लड़के थे, जिनके नाम वैंकटराव और लक्ष्मणराव थे । छोटी रानीने गोविंदराव को जन्म दिया जो कि तीनों लडकों में सबसे बडा था । नारायणराव की मृत्युके बाद जागीर की गद्दी के लिये झगड़ा उठा । गोविंदराव ने उसकी सहायता के वदले की इच्छासे पेशवा की नौकरी कर ली । इस समय पेशवा स्वयं अपनी गद्दीपर ह्रास को प्राप्त हो रहा था । छोटे भाई वैंकटराव ने जागीरपर अधिकार कर लिया और गोविंदराव के प्रयत्न को निष्फल करने के लिये सेना सम्बन्धी तैयारी करने लगा । गोविंदराव वैंकटराव के विरुद्ध प्रयाण करने को अभी समर्थ न हुआ किन्तु उसने पेशवाओं की तरहसे लड़ते हुए कोर गाँवकी लड़ाई में विशेष काम किया । उसने लड़ाइयों में भाग लिया; १८१८ के लगभग अँग्रेजों के साथ लड़ा परन्तु अन्तमें आष्टी की लड़ाई (१८१८ ई.) में मारा गया । घुड़सवारों का समूह जिसका नेता गोविंदराव था उसकी मृत्यु के बाद टूट गया ।

वैंकटराव. वैंकटराव ने शान्ति पूर्वक अपनी मृत्यु तक मुधोलका राज्य किया । वह अपनी प्रजा में और मरहट्टा राज्य के सरदारों में भी बहुत लोकप्रिय था । वह और उसका भाई लक्ष्मणराव अच्छे घुड़सवार थे और वैंकटराव तो अपने समय का महाराष्ट्रमें सबसे अच्छा घुड़-

सवार था। ब्रिटिश सरकार के आगमन के समय वैंकटराव मुधोलकी गद्दी पर था और सन्धिका कार्य उसी के नाम से हुआ था।

दुर्भाग्य से मुधोल के राजा वैंकटराव के समय तक अधिक काल के लिये अपने राज्य से अलग रहने के लिये लाचार थे। वे या तो दिल्ली और बीजापूर के बादशाहों की लड़ाई में लडते रहे या पूना के पेशवाओं की ओर से राज्य की बिलकुल परवाह न की गई। अपने अड़तीस वर्ष के लम्बे राज्यकाल में वैंकटराव को जागीर में शान्ति और उपयुक्त सरकार स्थापित करनेका पर्याप्त समय मिल गया। अपने सरदारोंकी सहायता से उसने जागरिमें नियमपूर्वक सरकार स्थापित कर दी और राज्य नैतिक अंग्रेज अधिकारियों की प्रशंसा प्राप्त की।

बलवंतराव. १८५४ ई० में उसके मृत्युके बाद उसका इकलौता और नाबालिग लड़का बलवंतराव गद्दी पर बिठाया गया परन्तु वह अठारह वर्ष की आयुमें एक ग्यारह महीने का बच्चा छोड़ कर मर गया १८६१ ई० में। बलवंतरावके लड़के का नाम वैंकटराव रक्खा गया। उसने रियासत का अधिकार १८८१ ई० में लिया और अठारह साल तक राज्य किया। उस की मृत्यु १९०० ई० में हुई। उसका एक मात्र जीवित पुत्र मालोजी उसका उत्तराधिकारी हुआ और उन्नीस वर्ष की आयु में १९०४ ई.

में उसे रियासत के सब अधिकार दिये गये। उसका विवाह धार के राजा के बहिन से कराया गया। जिससे उसके तीन बच्चे हुए। ज्येष्ठ पुत्र और अकेली लड़की युवावस्था में ही मर गये और छोटा पुत्र जो कि अब युवराज है सोलह वर्ष का है; अपनी पहिली स्त्री की मृत्यु के बाद मालोजीरावने दूसरी बार विवाह किया और वर्तमान रानी साहिबा काठियावाड़की जाड़ेजा गिराजवंशकी पुत्रीहैं।

गत महायुद्ध के अवसर पर मालोजी राजा ने अपनी सेवायें ब्रिटिश सरकार को दीं और वे ब्रिटिश पलटनों के लेफ्टिनेन्ट की हैसियत से इजिप्त में लड़ाईके मैदानमें गये थे। मुधोल के राजा को अपनी प्रजाके जीवन तथा मरण पर अधिकार है और उसे द्वितीय श्रेणी के राजाके सब अधिकार प्राप्त हैं। उसकी वंशानुगत नौ तोपों की सलामी है और वह इस एजेन्सी में सम्मानकी दृष्टि से प्रथम राजा है।

मुधोल रियासत का क्षेत्रफल ३६८ वर्ग-मील है और वार्षिक आय लगभग पाँच लाख के है। राज्य की राजधानी मुधोल घट-प्रभा नदी पर स्थित है, जोकि रियासत के बीच से उसके ३७ गांवों के पास होकर बहती है। भूमि प्रायः उपजाऊ काले रंग की है और यह नदी रियासत की खेती को स्वाभाविक लाभ पहुँचाती है।

उपसंहार।



चौदहवीं-सदी के प्रथम चतुर्थांश में हम सुजनसिंह को अपनी जन्मभूमि छोड़ कर भाग्यकी तलास में निकलते देखते हैं। इतिहास ने पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि उसका भाग्य दक्षिणमें चेता। मुसलमान भारतवर्षके स्थायी निवासी होगये थे और यहाँ तक कि राजपूत लोग भी मुसलमान राजाओं के सेनापति होकर काम करने को तैयार थे। बहमनी राज्यकी कथायें इस बात का पर्याप्त प्रमाण देती हैं कि मुसल्मानों ने इतरों को अपनी जातिके कारण किसी उत्तरदायित्व पूर्ण तथा मानके पद दिये जाने से कभी नहीं रोका गया। सुजनसिंहके वंशजोंको बहमनी और आदिलशाही के राज्यों में हम बड़े बड़े ओहदोंपर देखते हैं। दक्षिण में मरहट्टाराज्य के कायम करनेवाले शिवाजी के समय तक हम सुजनसिंहके वंशके प्रत्येक पुरुष को मुसलमान स्वामियों की भक्ति तथा श्रद्धापूर्ण नौकरी करते देखते हैं। शिवाजी के समयमें भी हम अनेक हिन्दू वंशोंको मुसलमानोंकी भक्ति-पूर्ण नौकरी में लगा पाते हैं।

सुजनसिंह की छठी पीढी के उग्रसेन या इन्दुसेन के कर्णसिंह और शुभकृष्ण दो पुत्र थे। प्रसिद्ध शिवाजीकी शाखा का निकास शुभ कृष्ण से है और मुधोल के राजा उग्रसेन के

ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह के वंशज हैं। कर्णसिंह की शाखा ने बीजापुर में आदिलशाही के स्थापन तक बहमनी राजाओंकी सेवा की। सुजनसिंह का तीसरा वंशज भोसाजी कहाया गया-यह वंश 'भोसलाओंका वंश' के नामसे इन्हीं भोसाजी के पीछे कहा गया। कोई कहते हैं कि वे भोसला इस लिये कहाये जाने लगे कि वे बहुत दिन तक इस नाम के एक किले में रहे थे। कुछ भी हो वंशका यह उपनाम चला आता है।

किन्तु कर्णसिंह की शाखाने उतने साहस और शूरताके प्रभाव से बहुत शीघ्र एक दूसरा उपनाम प्राप्त किया। कर्णसिंह और उसके पुत्र भीमसिंहने शत्रुके दुर्भेद्य किले पर पहुँचने के लिये गोह (जिसे मराठीमें घोरपड़ कहते हैं) से काम लिया था। कर्णसिंह लड़ाई में किलेमें मारा गया, किन्तु उसके पुत्र भीमसिंह ने 'राजा घोरपड़े बहादूर' का खिताब पाया। वह और उसके वंशज अपने नामों के पीछे राना के स्थान पर राजा का और घोरपडे का उपनाम की तरह प्रयोग करनेलगे। नामों तथा उनके अन्तिम भागों के इस परिवर्त्तन से कभी कभी लेखक गण भोंसला और घोरपडों का चित्तौर के सिसौ-दिया राजपूतों से उनके सम्बन्ध को भूलने का धोखा खागये हैं। वंशकी वह शाखा जिसने घोरपडे का नाम प्राप्त किया, अँग्रेजी

ऐतिहासिकों द्वारा 'भोंसला-घोरपडे' के मिले हुए नाम से वर्णन की गई है।

यदि हम बहमनी और आदिलशाही राज्यों का इतिहास अधिक ध्यानपूर्वक पढ़ें तो हमको पता चलता है कि दक्षिणी सेनापति तथा उनकी सेनाओं और परदेशी सेनापति तथा उनकी सेनाओं में उन्नति के लिये सदा झगड़ा रहता था। उत्तरीय भारत के सेनापति तथा उनकी सेनायें परदेशी समझे जाते थे। सुजनसिंह से दो शताब्दी पीछे तक इस्माइल आदिलशाह के समय तक हम देखते हैं कि घोरपडे और उनकी सेना परदेशियोंमें समझी जाती थी।

हमको इतिहाससे पता चलता है कि शिवाजी के पिता और चाचा क्योंकर शाहजी और सरीफजी कह लाये। परन्तु विठूजी, वैंकोजी, गोविंदराव आदि नाम जोकि दक्षिणमें देवताओंके नाम हैं किसी को विश्वास करा सकते हैं कि भोंसला तथा घोरपड़े दक्षिण के वासी हैं। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि उनकी जागीरें और सरंजाम कर्नाटक प्रान्त और महाराष्ट्र के भी कुछ भाग में थी तो हम को उनके नाम उन स्थानों के देवताओं के नामों के पीछे देखकर आश्चर्य न होगा। यदि कोई ऐतिहासिक राजाओंके नामों के आधार पर ही उनके आदि निवास स्थान का पता लगाना

चाहता हैं, तो चोलाजी घोरपड़े का नाम उसे भारत के अत्यन्त दक्षिणभाग में ले जायगा यद्यपि उस वंश के अधिक नाम स्पष्टतया राजपूत निकास के हैं ।

विश्वस्त ऐतिहासिक प्रमाण के होते हुए उपर्युक्त शब्दों के लिखने की कोई आवश्यकता न थी पर उनको यहाँ यह दिखाने के लिये लिखा गया है कि साधारण तया किस प्रकार ऐतिहासिक लोग भूल कर बैठते हैं ।

सुजनसिंह का घोरपड़े वंश सारे महाराष्ट्र में फैल गया है किन्तु उसमें केवल तीन या चार शाखायें रहती हैं जो कि काफी मशहूर हैं । पिछले पृष्ठोंमें चोलराज के लिये कहा गया है कि उसके तीन लड़के थे । ज्येष्ठ पुत्र पिलाजी से मुधोलकर वंश निकला । राजाराम का प्रसिद्ध सेनापति मशहूर सन्ताजी घोरपड़े चोलराज के दूसरे पुत्र वल्लभसिंह का वंशज था । कापसी तथा गजेन्द्रगढ़ और सोंडूर राज घराने वल्लभसिंह से चले हैं ।

सुजनसिंह के खानदानी भोंसला और घोरपड़े दोनों ने दक्षिण के एक या दूसरे मुसलमानी राज्यमें बहादुर सेनापति की तरह अपने को चमकाया । वे अपने स्वामी के लिये भक्ति तथा ईमानदारी से लड़े यद्यपि कभी कभी उन्हें अपने खास बन्धुओं से सामना करना पड़ता था । फिरभी शाहजी भोंसला

के आदिलशाही राजा के यहाँ नौकरी कर लेने पर एक दुर्घटना होगई। कर्नाटक के घेरे के समय शाहजी पर धोखा देने का सन्देह किया गया और उसे गिरफ्तार करने का हुक्म दे दिया गया। शाहजी का पीछा करने और खुली लड़ाई में उसे गिरफ्तार करने का काम बाजीराजा के भाग्य में आया, जो कि उसका एक सम्बन्धी था। कई ऐतिहासिक गलती से लिखते हैं कि जो कि शाहजी पर उसके पुत्र शिवाजी को छिपी सहायता देने का सन्देह किया गया था, इससे बाजीराजा ने धोखा देकर शाहजी को एक दावत में गिरफ्तार किया था। किन्तु घटना का विश्वसनीय हाल पहिले पृष्ठोंमें दिया गया है। बाजीराजा धोखा देने का दोषी नहीं वरन अपने स्वामी के नमक हलाल होने का।

घोरपड़े वंश का अब तक का इतिहास सैनिक कार्यों और भक्तिपूर्ण सेवाओं की लम्बी कहानी है। अधिकांश घोरपड़ों ने अपने प्राण युद्ध क्षेत्रमें छोड़े हैं वे दृश्य भी देखने लायक होंगे, जबकि घोरपड़े वंश के पुरुष मिलते होंगे। शत्रु की तलवार और बर्छी के घावों से चिह्नित सूर्य से झुलसाये हुए प्रबल वीरों के चेहरे देखकर डर और रोबपैदा होता होगा। युद्ध क्षेत्र उनकी क्रीडाभूमि और शय्या थी और घोरपड़े दोनों का सामना एक उत्सुकता तथा साहस के साथ करते थे।

घोरपड़े लोग राज्यके प्रबन्ध में पूर्णदक्ष थे इस बात का ज्ञान इससे होता है कि सत्रहवीं सदी के मध्य तथा अन्तमें प्रतापसिंह तथा उसके दो उत्तराधिकारी बीजापुर के आदिल शाहों के आय विभाग के मन्त्री थे। बीजापुर राजघरके नष्ट होजाने के बाद भी हम देखते हैं कि अठारहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में अखयजी तथा उसका पौत्र मालोजी बीजा-पुरके गवर्नर के उत्तरदायी पद पर थे।

घोरपड़ों की राजभक्ति में तो कोई सन्देह ही नहीं कर सकता। अनेक अवसरों पर अपने स्वामी का जीवन बचाने के लिये उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये हैं। इसके अतिरिक्त वे प्रलोभनों के शिकार कभी नहीं बने। जब कि अन्तिम बादशाह सिकन्दर आदिलशाह के राज्य में बीजापुर का राज्य छिन्न भिन्न हो रहा था मालोजी द्वितीयको अच्छा अवसर था और शिवाजी ने उसके प्रदेश बढ़ाने का वचन भी दिया था परन्तु यह वह केवल अपने स्वामी को छोड़कर कर सकताथा,उसने राजभक्त रहना स्वीकार किया चाहें गरीब ही क्यों न रहे।

आगे चलकर पेशवाओं द्वारा दक्षिण में मुगल प्रदेश जीत लिये जानेपर भी मालोजी तृतीय अन्ततक मुगलों का वफादार रहा। वह बहुत काल मरहट्टा राजसंघसे अलग रहा और अन्त में एक मित्रकी तरह उसमें मिला। मालोजी यश की हद तक पहुँच जाता है,जब

कि यह अपने पुत्र गोविंदराव से आमने सामने लड़ता है और उसका पुत्र भी अपनी वारीसे अपने निजाम के प्रति कर्त्तव्य पूरा करता है पूनामें पेशवा के दरबार में मालोजी तृतीय से वहांके कामचोर और धोखेबाज खुशामदी डरते थे। पुराना योधा८२वर्ष की आयुमें नमक हराम होल्कर से लड़ने गया और घायल हो गया।

मुधोल की राज्यजागीर बहमनी राजा फीरोजशाह ने हि. स. ८०० में भैरवजी अथवा भोसाजी जिनसे कि भोसला उपनाम चला है। को दी थी। आदिलशाहों ने भी इसे उसी वंशमें प्रचलित रक्खा। इस्माईलआदिलशाह के राज्य के समय महलोजी या मालोजी प्रथम को मुजरा कुर्नीसत (निश्चित प्रथानुसार राजाको प्रणाम करना) से छुटकारा और मोरचल ढुलवाने का अधिकार मिला। राजा का खिताब इससे पूर्वही १४६९ ई० में भीमसिंह द्वारा प्राप्त किया गया था। उसके बाद १६७० ई०में अलीआदिलशाह के राज्य कालमें मालोजी द्वितीय को अपनी मुधोल की जागीर पर सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हुए। और इसके बाद उसके वंशने आदिलशाहों की जो सेनायें कीं वे उन अतिरिक्त प्रदेशों के बदले में कीगईं जो कि उन्हें सेनाके व्यय के लिये मिलते थे।

इसके बाद यह वंश अपने स्वतन्त्रता के अधिकार की बुद्धिमत्तासे रक्षा करता है और

जब कभी आवश्यकता होती है उस पर बल देता है। मालोजी तृतीय ने अन्त तक पेशवा के चौथ के अधिकार का प्रतिवाद किया और चौथ देने की अपेक्षा उसके खर्च मिलने पर एक बराबर के मित्र की तरह नौकरी करना स्वीकार किया। वंशके इसी अभिमान और स्वतन्त्रता के प्रेम के कारण मालोजी तृतीय ने पेशवाओं से कोई जागीर लेने को मना कर दिया। १७७९ ई० के नंदगाँव के युद्ध के बाद जब पेशवा जागीर देनेके लिये तैयार थे, मालोजीने उनसे अपने अन्य सम्बन्धियों को जागीर देनेके लिये कह दिया। उसको स्वयं जागीर लेने में अपनी स्वतन्त्रता खो देने का डर था। वह बहमनी राजाओं से दिये गये देशमूखी वतन के हिस्से से ही सन्तुष्ट था। अत्यन्त संकट में भी वंशके अभिमान और ईमानदारी ने उसका साथ नहीं छोड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिमभाग में घोरपड़ों के राजपूती रक्त ने अपने आपको दिखाने का कोई अवसर नहीं पाया है। फिर भी वर्त्तमान समय का घोरपड़ा अपने पूर्वजों के सैनिक विश्वास और अभिमान से भरी हुई कहानियों को पढ़कर अपने जीवनको भी उच्च बनाने का विचार कर सकता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!